मनोविज्ञान अंक-तृतीय खण्ड

अखण्ड ज्योति

(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मूल्य २) | सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥ | एक प्रति का ≡)

सम्पादक— श्रीराम शर्मा आचार्य

इस अंक के सम्पादक— प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र

वर्ष ७ | मथुरा, १ मार्च सन् १९४६ ई० | अंक ३

मन में से भय की भावनाऐं निकाल फेंकिए

भयभीत होना एक अप्राकृतिक बात है। प्रकृति नहीं चाहती कि मनुष्य डर कर अपनी आत्मा पर बोझ डालें। तुम्हारे सब भय, तुम्हारे दुःख, तुम्हारी नित्य प्रति की चिन्ताऐं तुमने स्वयं उत्पन्न करली हैं। यदि तुम चाहो तो अन्तःकरण का भूत प्रेत पिशाचों की श्मशान भूमि बना सकते हो। इसके विपरीत यदि तुम चाहो तो अपने अन्तःकरण को निर्भयता, श्रद्धा, उत्साह के सद्गुणों से परिपूर्ण कर सकते हो। अनुकूलता या प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाले तुम स्वयं ही हो। तुम्हें दूसरा कोई हानि नहीं पहुंचा सकता, बाल भी बाका नहीं कर सकता। तुम चाहो तो निर्भय, परम निःशंक बन सकते हो। तुम्हारी शुभ, अशुभ वृत्तियां, यश अपयश के विचार विवेक बुद्धि ही तुम्हारा भाग्य निर्माण करती हैं।

भय की एक शंका मन में प्रवेश करते ही, वातावरण को सन्देह पूर्ण बना देती है। हमें चारों ओर वही चीज नजर आने लगती है जिससे हम डरते हैं। यदि हम भय की भावनाऐं हमेशा के लिए मनोमन्दिर से निकाल डालें तो उचित रूप से तृप्त और सुखी रह सकते हैं। आनन्दित रहने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अन्तःकरण भय की कल्पनाओं से सर्वथा मुक्त रहें। आइए, हम आज से ही प्रतिज्ञा करें कि "हम अभय हैं। भय के पिशाच को अपने निकट न आने देंगे। श्रद्धा और विश्वास के दीपक से अन्तःकरण में आलोकित रहेंगे और निर्भयता पूर्वक परमात्मा की इस पुनीत सृष्टि में विचरण करेंगे।"

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

"अखण्ड ज्योति" द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति के पीछे लेखक का गहरा अनुभव एवं अनुसंधान है। इतने गहन विषयों पर इतना सुलभ साहित्य अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है। यह पुस्तकें पाठक की जीवन दिशा में उथल पुथल उत्पन्न कर देने की दैवी शक्ति से पूर्ण तथा सम्पन्न हैं।

१—मैं क्या हूं? ।=)
२—सूर्य-चिकित्सा विज्ञान ।=)
३—प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
४—परकाया प्रवेश ।=)
५—स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
६—मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
७—स्वरयोग से दिव्य ज्ञान ।=)
८—भोग में योग ।=)
९—बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
१०—धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
११—पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
१२—वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
१३—मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
१४—जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
१५—ईश्वर कौन है? कहां है? कैसा है? ।=)
१६—क्या धर्म? क्या अधर्म? ।=)
१७—गहना कर्मणोगति ।=)
१८—जीवनकी गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
१९—पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
२०—शक्ति संचय के पथ पर ।=)
२१—आत्म गौरव की साधना ।=)
२२—प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
२३—मित्र भाव बढ़ाने की कला ।=)
२४—आन्तरिक उल्लास का विकास ।=)
२५—आगे बढ़ने की तैयारी ।=)
२६—अध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
२७—ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
२८—ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ।=)
२९—यम और नियम ।=)
३०—आसन और प्राणायाम ।=)
३१—प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि ।=)
३२—तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
३३—आकृति देख कर मनुष्य की पहिचान ।=)
३४—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
३५—ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
३६—हस्तरेखा विज्ञान ।=)
३७—विवेक सतसई ।=)
३८—संजीवनी विद्या ।=)
३९—गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
४०—महान जागरण ।=)
४१—तुम महान् हो ।=)
४२—ग्रहस्थ योग ।=)
४३—अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति ।=)
४४—घरेलू चिकित्सा ।=)
४५—बिना औषधि के कायाकल्प ।=)
४६—पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण ।=)
४७—हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं? ।=)
४८—विचार करने की कला ।=)
४९—दीर्घ जीवन के रहस्य ।=)
५०—हम वक्ता कैसे बन सकते हैं =)

कमीशन देना कतई बन्द है। हां आठ या इससे अधिक पुस्तक लेने पर डाकखर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें लेने पर रजिस्ट्री पार्सल का खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा।

पता—मैनेजर 'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

सत्य प्रेम न्याय
अखण्ड ज्योति
-मथुरा-

मथुरा, १ फरवरी सन् १९४६

अपने चिकित्सक स्वयं बनिये

जितनी अच्छी तरह आप स्वय अपने मन को समझ सकते हैं, उसकी कमज़ोरियें, निबर्लतायें, न्यूनतायें या प्रवृत्तियां पहिचान सकते हैं इतनी उत्तमता से अन्य कोई भी चिकित्सक नहीं पहचान सकता। चिकित्सक का सम्भव है कि आप अपने गुप्त रहस्य न बता सकें किन्तु आप स्वयं उन्हें भली भांति समझ सकते हैं, और स्वयं अपने ध्यान सूचनाओं, विश्वास तर्क तथा अध्ययन शक्तियों से उनका निराकरण भी कर सकते हैं। स्वय यह कार्य जितनी अच्छी तरह से हो सकता है, इतनी उत्तमता से कोई भी मानसोपचारक नहीं कर सकता।

समस्त रोग तथा व्याधियों के मुख्य कारण ईर्षा, स्वार्थ, प्रतिशोध, क्रूर दुर्भाव ही हैं। यदि तुम्हारा मन अशांत या चंचल रहता हैं तो उसका अभिप्राय यह है कि तुम किसी से द्वेष रखते हो या ईर्षा, स्वार्थ, प्रतिशोध क्रोध आदि की भट्टी में जल रहे हो। प्रत्येक विरोधी, तृष्णा, भ्रम, संशय या संघर्ष का अनिष्ट विचार निरंतर उथल पुथल मचाया करता है। हमारे मन की कल्पना, मलिनता मोह, चिन्ता सन्देह सब प्रकार की अनुकूलता की मांगें जैसे मान प्रतिष्ठा, धन, धान्य हमें अस्त व्यस्त रखते हैं। और जीवन को दुखी बनाते हैं। मनुष्य को, अनेक व्यर्थ के भय न होने वाली बातों की चिन्तायें निरंतर दुःखी बनाया करते हैं। कितने ही व्यक्ति संसार के क्षुद्र मान, प्रतिष्ठा, जन, कीर्ति वस्त्र अहंकार जैसे जड़ पदार्थों के न मिलने से उद्विग्न बने रहते हैं। मिथ्या अहंकार के पीछे पागल रहते है। हमें अमुक भोजन चाहिये अमुक अलंकार चाहिये, अमुक सुन्दर स्त्री चाहिये —ऐसी अनेक कपोल कल्पित बातों को लेकर बहुसंख्यक बन्धनों में अपने आप को बांधा करते हैं। सांसारिक आकाक्षाएँ उन्हें बन्धन में बांधती तथा चारों ओर घसीटती रहती है।

धर्मबुद्धि से रोगों का निराकरण—

इन अज्ञात ग्रन्थियों को आप स्वयं चाहें तो चेतन मन के समक्ष ला सकते हैं। यदि कारण ज्ञात न हो और दुःख न हटे तो धार्मिक भावना बढ़ाने की नितांत आवश्यकता है। इस से आप के दुर्भाव मिथ्या आरोप, क्षुद्र त्रास कल्याणकारी मधुरता में बह जायेंगे। सब ओर से त्रस्त सताया हुआ व्यक्ति भी धर्म की एक डुबकी से पूर्ण परितृप्ति हो सकता हैं। धर्मबुद्धि मनुष्य में प्रारम्भ से ही रहे तो उसे क्यों मानसिक रोगों का शिकार बनना पड़े।

मनुष्य के शरीर में अशुद्ध एवं रोगी रुधिर तभी तक प्रवाहित होता है जब तक उस के मन में अशुद्ध विचार रहते हैं। दुःख व नरक तभी तक नजर आते हैं जब तक मन स्वार्थ, ईर्षा, प्रतिशोध एवं क्रोध के विनाश कारी दुर्भावों में व्यस्त रहता है। यदि तुम शरीर को निरोग, निर्विकार, स्वस्थ रखना चाहते हो तो मन के मैल को बहा दो। मत्सरता, द्वेष निरुत्साह और दूसरों से बदला लेने की भावना को बिल्कुल हटा दो। जिस प्रकार प्रकाश तथा विशुद्ध वायु के आने से गृह योग्य बन जाता

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

है। उसी प्रकार सुख, मैत्री, करूणा विश्वमैत्री, भलाई, परोपकार मृदुता के विचारों में रमण करने से मुखाकृति सुन्दर बनती तथा शरीर व मन शान्त एवं आनन्द दाई बनता है।

मैत्री भावना से रोग निवारण--

द्वेष, क्रोध, ईर्षा स्वार्थ, क्रूरता का प्रतिकार मैत्री भावना से होता है। कायरता से मुक्त होना हो तो योग सूत्र में वर्णित मैत्री भावना का आश्रय ग्रहण करो। मैत्री भावना भीरुता की विनाशक है। मनुष्य को सब के प्रति सद्‍भावना रखना ही और शुद्ध, रमणीय, मधुर प्रदेश में ही शान्ति है, वही तृप्ति है। संसार के बाह्य पदार्थों से वृत्ति हटा कर आत्मा में ही स्थिर रहो। उसी प्रशान्त प्रदेश में तुम्हें अखंड प्रसन्नता, सुस्थिर बुद्धि, और पूर्ण तृप्ति प्राप्त होगी।

आप प्रातः अथवा सायंकाल शान्त चित्त होकर इन भावनाओं में रमण कीजिए—"मैं हर प्रकार से परिपूर्ण हूं। तृप्त हूं। मुझे पूर्ण अनुभव है कि वास्तविक सुख का भंडार तो आत्मा है। मैं संसार के मिथ्या धन, मान, प्रतिष्ठा, वैभव बढ़ाने के लिए हाय हाय नहीं करता. मैंने आत्मा में स्थिरता प्राप्त करली है। अतः मुझे पूरी बे फिक्री है, निश्चिन्तता है, आत्म-तृप्ति है। मेरे पास सब कुछ है। मुझे बाहरी सम्पदाओं की आवश्यकता नहीं है। मेरे हृदय से प्रलोभन लोभ, अतृप्ति अनिष्ट कल्पनाएँ, दुष्ट वासनाएँ दुश्चिंताऐं विनष्ट हो गई हैं और मैं आध्यात्मिक उच्च शिखर पर आरूढ़ हो गया हूं। मेरी आत्मा में सब प्रकार की सामर्थ्य है। मैं उसी में तृप्त हूं।"

इस प्रकार की उच्च भावनाओं में ध्यान मग्न होने से हृदय में अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा और अज्ञानांधकार दूर होकर तुम्हारे अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश देदीप्यमान होने लगेगा। जिसका मन अनात्म पदार्थों में लीन नहीं होता वही सर्व व्यापी चेतन में स्थिर एवं एकाग्र रहता है।

दुःखों की ओर से उपेक्षा की भावना—

दुःखों, क्लेशों, हानियों को पुनः पुनः स्मरण करने की अपेक्षा उन्हें पर्वत के समान समझने के बजाय उधर से विमुख तथा लापरवाह होकर विस्मृत कर देना आध्यात्मिक शान्ति का देने वाला है। भूल जाना, विस्मृत कर देना, उसे याद न करना ही एकमात्र उत्तम उपाय है। उधर से ला परवाह होकर किसी नवीन कार्य में संलग्न होना उत्तम है। आप अपने रोगों का विचार न कर उधर से सर्वदा के निमित्त उपेक्षित हो जाइये। आपतो यही उच्चारण कीजिए— 'परमात्मा स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य पर मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है। पर मेरा कर्तव्य है कि जल्दी से जल्दी इस खज़ाने पर अधिकार जमा लूं। मैं अनुभव कर रहा हूं कि आदर्श स्वास्थ्य तथा बल की तरंगें मुझ में से निकल कर रोग, क्लेश और शोक को धो रही हैं।" उसका आयास करना ही मैत्री भावना का स्वरूप है। जब आप समस्त विश्व के प्राणियों से मित्रता का नाता निबाहते हैं तो आप शत्रु को भी मित्र ही समझते हैं। आप किसी भी अवस्था में दूसरे की बुराई सोच ही नहीं सकते। मैत्री भावना से परिपूर्ण हृदय में अक्षय शान्ति विराजती है, वह भयानक स्वप्नों से त्रस्त ध्वस्त नहीं होता। स्मरण रखिए, जब हम दूसरों का अकल्याण बुरा चाहते हैं, ईर्षा द्वेष, विरोध करते हैं तभी उनसे डरा करते हैं और बेचैन रहते हैं किन्तु अपने शत्रुओं, विद्वेषियों, प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति प्रेम, क्षमा, भ्रातृ-भाव रखते हैं अपने प्रति क्रोध करने वाले से भी मीठी अमृत सदृश वाणी में बोलते हैं, प्रेम पूर्वक शान्त चित्त से मन बुद्धि, इन्द्रियों से सबकी भलाई ही भलाई सोचते हैं तो मन का मैल नष्ट होता है और सुख की नींद मिलती। पशुत्व से हम आत्म-भावना की ओर अग्रसर होते हैं। इसी एक मैत्री-भावना के अभ्यास द्वारा निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, परनिंदा से मुक्ति, धृति, पवित्रता प्राप्त

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

होती है और ईश्वरीय संपत्ति की वृद्धि होती है। मैत्री भावना की साधना के लिए शरीर की बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि के साथ साथ निरन्तर आत्मनिरीक्षण और सद्विचार की नितान्त आवश्यकता है।

आत्म-संतोष से रोग-मुक्ति--

आज के प्रलोभनों से भरे भौतिक जगत् में हमारी आवश्यकताएँ अत्यधिक बढ़ चुकी हैं। हमारी तृष्णा अपरिमित रूप में बढ़ती जा रही है। हम सभी उचित अनुचित इच्छाओं की तृप्ति इसी लोक में करना चाहते हैं। इसी अतृप्त बुद्धि या अतृप्त उच्छृंखल तृष्णा का परिणाम मानसिक व्याधियां हैं जैसे प्रकृति माता हमें यह शिक्षा देना चाहती हो कि हमें अपने मन पर संयम नहीं है। असंतोषी अतृप्त व्यक्ति पग पग पर व्याधियों का शिकार होता है। अतः हमें चाहिए कि आत्म-तृप्ति की भावना को दृढ़ करें और बे फिक्री पूर्ण निश्चिन्तता-से रहें।

अमुक वस्तु से हमें आनन्द होगा या अमुक वस्तु प्राप्त न होगी तो हमें खेद या दुःख होगा— इस प्रकार की वासना-जन्य मान्यताओं को एक दम त्याग देना चाहिए। पूर्ण सुख-पूर्ण आनन्द का भंडार तो हमारा आत्मा है। आनन्द हमारे भीतर है। आत्मा के सामर्थ्य पर बारबार चिंतन करने से आत्मशक्ति का बोध होता है तथा सब प्रकार के मानसिक रोग दूर होते हैं। जीवन का विकास भीतर से होता है। जिस क्षण तुम्हें अपने व्यक्तित्व के केन्द्र आत्मा के भीतर स्थिरता प्राप्त हो जायगी, उसी क्षण अक्षय उत्साह तथा आत्मभाव (देवभाव) की तरंगें तुममें उद्वेलित होने लगेंगी। प्रातःकाल उठते ही नित्य प्रसन्नता एवं शान्ति के विचारों में रमण करने से शुभ आध्यात्मिक संस्कार अंकित होते हैं। 'शान्ति, आनन्द, तृप्ति का अनन्त स्रोत मेरे अन्तःकरण में बह रहा है।"—इस भावना में तद्रूप हो जाने से समस्त मानसिक रोगों का निराकरण होता है। जो रोगी आत्मद्योतन द्वारा आत्मशक्ति का रहस्य समझ गया है उसके समस्त दुःख रोग दूर हो जाते हैं—

ज्ञात्वा देवं पाशा पहानिः
क्षीणैः क्लेशै जन्म मृत्यु प्रहाणिः—

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

जो मनुष्य अन्तर्स्थित आत्म-देव को जान लेता है, वह आध्यात्मिक शक्ति के रहस्य को समझ लेता है और मानसिक अशान्ति से मुक्त हो जाता है। आत्मा की खिड़कियां खोलिए और प्रकाश आने दीजिए।

निर्दोश प्रसन्नता रोग निवारक है।

मानसिक रोग निवारणार्थ "हास्य भाव" बेचूक निशाना है। यह हृदय में शीतलता देता है, फुफ्फुस को फैलाता है और उसके अंतरङ्ग परदे को पुष्ट करता है। यदि आपका मन उदास है, खिन्न है, चचल है भ्रमित है बस, ठीक उसी समय आप इस महौषधि (हास्योपचार) से सहायता लीजिए। थोड़ा मुसकुराइये। उस मुसकराहट को बाहर हँसी के रूप में प्रकट करो तत्पश्चात् जोर से हँसने लगो; खूब हँसो। यहां तक हँसो कि लोट पोट हो जाओ। इस महौषधि का महत्त्व सेवन से ही ज्ञात होगा, केवल पढ़ने मात्र से नहीं। सृष्टि के प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो हँसना जानता है और "हास्य भाव" से मानसिक व्याधियों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अतः हँसो और इतने हँसो कि हँसते हँसते पेट दुखने लगे।

इस संसार में प्यार करने लायक दो वस्तुएं हैं एक दुख, दूसरा श्रम। दुख के बिना हृदय निर्मल नहीं होता और श्रम के बिना मनुष्यत्व का विकाश नहीं होता।

× × ×

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मानसिक व्याधियों के विविध उपचार।

यदि मन समस्त व्याधियों का जन्मदाता है, तो यही मन समस्त व्याधियों को दूर कर, अक्षय आनन्द एवं शान्ति देने वाला और विदग्ध हृदय पर अमृत की वर्षा करने वाला भी है। संसार की समस्त चिंताएँ, व्याधिएं, दुःख, क्लेश ताप, काम, क्रोध, ईर्षा आदि विकार नष्ट कर निर्विशेष आनन्द देने वाला और सुखमय स्वर्गीय जीवन देने वाला भी हमारा यही मन है। कुटिल मनोविकारों, मनोजनित रोगों, निकृष्ट भूमिकाओं से छुटकारा दिलाने वाला भी यही हमारा मन है। मन हमारा सबसे बड़ा सहायक है, मित्र है, चिकित्सक है परमेश्वर का वरदान है।

तुम्हारे अन्तर्जगत् में जो संघर्ष प्रस्तुत है, सब तकलीफ, चिंता, भय, व्यथा, क्लेश, यातना, रंज, शोक, क्षोभ, जो आन्तरिक शान्ति भंग कर रहे हैं, इन सब यातनाओं का मूल कारण यह है कि तुम मन की निम्न भूमिका में निवास करते हो। मानस प्रदेश की दो भूमिकाएँ हैं—एक उच्च, द्वितीय निम्न। आत्मा के निकट मन की सर्वोच्च भूमिका है वहां अप्रतिम सामर्थ्यों का अखंड सद्भाव रहता है। मन की निम्न भूमिका में नीच से नीच अकल्याणकारी व्याधियां, रोग, शोक, कुत्सित मनोविकार उपद्रव मचाया करते हैं। ये नीच मनोविकार उच्च विचारों की अपेक्षा अधिक गुरु एवं आकर्षक होते हैं। मानस प्रदेश की नीची भूमिका में जाना या वास करना मानों अधिकाधिक व्याधियों के चंगुल में फँसते जाना है। मन के महल की सबसे निम्न भूमि बड़ी संकीर्ण, ऊजड़ खाबड़ एवं अंधकार आवृत है। इसमें विचरण करने वाले व्यक्तियों को अनेकानेक रोग, व्याधियां, संकट, मानसिक कष्ट, यंत्रणाएँ, अभद्र विघ्नों का शिकार बनना पड़ता है और बड़ा परेशान अस्त व्यस्त रहना पड़ता है। मन के विकास की निम्न भूमिकाओं में यदि तुम अमावस्या की घनघोर काल रात्रि का अन्धकार देखना है तो निःशंक उस अँधेरे प्रदेश में भ्रमण करते रहो परन्तु यदि तुम्हें कुछ भी स्वास्थ्य, सुख, शान्ति, आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो किसी प्रकार उस भूमिका से उठ कर उच्च भूमिका की ओर उठने का प्रयत्न करो।

शंका, सदेह ईर्षा, उत्साह-हीनता, निराशा इत्यादि मन की विभिन्न कुत्सित अवस्थाएँ हैं। परमेश्वर मानव शिशु के अन्तःकरण में इनका बीजारोपण नहीं करता प्रत्युत अपने कुकर्मों. प्रतिकूलताओं, बड़ों के असत् व्यवहारों द्वारा ही हम इन विकारों को विकसित करते हैं। जो व्यक्ति किसी अज्ञात भय से थर थर कांपता है, उसने जिस कायरता का विकास किया है, वह उसकी स्वयं की उत्पन्न की हुई अनिष्ट मनः स्थिति है.

हमारे भीतर एक अन्तर्मन है, अचेतन मन है, हमारा अन्तर्ज्ञान इसी अचेतन मन द्वारा प्रकट होता है। इसी अन्तर्मन में वे गुप्त सामर्थ्य भरे पड़े हैं जिनसे मानव का रक्षण अथवा भक्षण होता है। यदि हम प्रयत्न करें, तो इस अन्तर्मन में से शंख घोंघे, पत्थरों के स्थान पर, यहीं से, बहु मूल्य मुक्ता मणि एकत्रित कर सकते हैं। अन्तर्मन (Unconscious mind) का अपार सामर्थ्य हमारी संरक्षक सत्ता है। मानसिक व्याधियों के निराकरण की अद्भुत शक्ति, जीवन की विकट घटनाओं एवं प्रसंगों से रक्षा करने में अन्तर्मन पूर्ण समर्थ है। मानसिक प्रक्रियाओं से जागृत की हुई अन्तःस्थित संरक्षक सत्ता हमारा कवच है, अमृत है। मानस चिकित्सक का कार्य मनुष्य के अन्तर्मन में प्रस्तुत किन्तु सुषुप्त संरक्षक-सत्ता को जागरुक बनाना है। रोगी के मन का सामर्थ्य ही उसके लिए आरोग्य रूपी फल का देने वाला होता है। अनेक

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उपचारक दवाई, काढ़े, भस्म इत्यादि देकर रोग ठीक करते हैं किन्तु मानस-चिकित्सक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा ऐसे शब्दों का उच्चारण करता है कि उनके श्रवण से रोगी के मन पर प्रभाव पड़ता है और उसी के फलस्वरूप अन्तर्मन की संरक्षक सत्ता जागृत होती है । यही सत्ता रोग विनाशनी, परम कल्याणकारी औषधि है । अन्तर्मन की आन्तरिक सामर्थ्य बढ़ाने से मानसिक बल प्राप्त होता है । इस सामर्थ्य द्वारा मनुष्य सुख सम्पत्ति, यश कीर्ति आदि सब कुछ प्राप्त कर सकता है । इस सामर्थ्य की सत्ता मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर पर ही नहीं, प्रत्युत परमात्मा ने मनुष्य को सुखी रखने के लिए इसकी सृष्टि अन्तःकरण में की है । इसमें महान् उत्पादक बल निहित है ।

निश्चय बल बढ़ाने से मानसिक सामर्थ्य की तृप्ति होती है । यही कार्य मानसोपचारक को प्रारम्भ करना चाहिए । पूर्ण उत्साह एवं अदम्य आग्रह से निश्चयों को दृढ़ करो । अपने अन्तःकरण में मानसिक सामर्थ्यों का पूर्ण विकास करने का दृढ़ संकल्प करो ।

' चाहे कैसे भी कठिन विघ्न मानसिक उन्नति में उपस्थित हों, मैं अपने आन्तरिक गुप्त सामर्थ्य को प्रकट करूँगा । मुझ में इच्छानुकूल संकल्प बल बढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य है । रोग, शोक, व्याधि, का शमन करने का, गुप्त बल बढ़ाने का मैं पूर्ण दृढ़ संकल्प करता हूं । "—इन निश्चयात्मक भावनाओं में निरन्तर रमण करो, इन्हें पान कर जाओ और संकल्पों, अपने शुभ निश्चयों को मजबूत करो ।

मस्तिष्क की शक्ति का विकास—

समस्त मानसिक सामर्थ्यों का मुख्य साधन मस्तिष्क है । मन और मस्तिष्क का घनिष्ट सम्बन्ध है । रोग, शोक व्याधि, निराशा निर्बल मस्तिष्क के फल हैं । मस्तिष्क के सूक्ष्म अणुओं में कल्पनातीत बल वर्तमान है ।

श्री दुर्गाशंकर जी नागर ने मानसिक सामर्थ्यों की अभिवृद्धि के निमित्त चार तत्त्वों की आवश्यकता बताई है:—(१) उत्तम मस्तिष्क । (२) मन की शुद्धि और पोषण के लिए शक्ति संचय । (४) मनन शक्ति का उपयोग । मस्तिष्क को उन्नत करने के लिए उसके सूक्ष्म अणुओं की संख्या में अभिवृद्धि करना आवश्यक है । मस्तिष्क के किसी भाग में रक्त की गति तीव्रता से संचार करने से वह भाग परिपुष्ट होता है, उसकी शक्ति विकसित होती है किन्तु दुष्ट मनोविकारों, अभद्र शंकाओं एवं निराशा के वशीभूत होकर उन ज्ञान-तन्तुओं की स्वाभाविक शक्ति के विकास का मार्ग बन्द हो जाता है । घृणा, द्वेष, क्रोध चिड़चिड़ाहट, कुढ़ने से मस्तिष्क के महाशक्तिशाली अणु संकुचित होकर क्षीण हो जाते है । अनेक सूक्ष्म अणु बिल्कुल विनष्ट होकर गायब हो जाते हैं । अतः इनके प्रभाव से मस्तिष्क में नाना प्रकार के विकार प्रारम्भ होते हैं और अनेक व्याधियां प्रकट होती हैं । दुराचार व दुष्ट व्यसन से अधिक बल क्षीण होता है और मनुष्य रोग ग्रस्त बनता है ।

विकसित करने के नियम तथा विधि—

डाक्टर नागर जी ने बड़ी खोज के पश्चात् मस्तिष्क की गुप्त सामर्थ्यों को विकसित करने के लिए निम्न नियम निर्धारित किए हैं:—

जब जब निराशा, उत्तेजना, भय, क्रोध, उद्वेग या अन्य विकार प्रकट होकर तुम्हें अस्त व्यस्त करें, उसी समय जिन अङ्गों से ये विकार प्रकट होते हों, भावना करो कि उस अङ्ग का सामर्थ्य उच्च व विशुद्ध हो रहा है और दृढ संकल्प करो कि अब अनिष्टकारी वृत्ति का मन पर अधिकार न होगा । अन्तर में गहरे उतर कर तीव्र इच्छा करो कि मेरा पूर्ण शरीर विशुद्ध हो रहा है । अधम विकार का आवेग अन्तःकरण में नहीं उठ सकता । रात्रि में सोते समय यही भावना मन में आरूढ़ करके सो जाओ

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

कि सम्पूर्ण शरीर विशुद्ध हो रहा है और समस्त शक्तिएँ आन्तर प्रदेश में आकर्षित होकर एकत्रित हो रही हैं।

मस्तिष्क का मध्यबिन्दु दोनों कानों के बीच के मध्य भाग का स्थान है। इस स्थान पर कम से कम दस मिनट अन्त दृष्टि स्थिर करनी चाहिए व साथ साथ यह भी दृढ़ चिन्तन करना चाहिए कि अणुओं की तेजी से वृद्धि हो रही है। एवं समस्त शरीर के अणु रोग विहीन होकर परम विशुद्ध हो रहे हैं। हम व्यर्थ उत्तेजित करने वाली वृत्ति के कभी वशीभूत न होंगे। हम ईर्षा, द्वेष, क्रोध पर पूर्ण संयम करेंगे। हमारे मस्तिष्क का निर्माण विशुद्ध रीति से हो रहा है। एकाग्रता के समय मन को अत्यन्त शान्त एवं समाधान की स्थिति में रक्खो और संकल्पयुक्त करो। एकाग्रता के समय मन में पूर्ण श्रद्धा रक्खो। अभ्यास के समय जितनी श्रद्धा रखोगे, उतना ही उत्तम फल व परिणाम होगा श्रद्धा सामर्थ्य को जाग्रत करती है। एकाग्रता के समय शुभ संकेत (Suggestions) करना आवश्यक है। "रोगों से मुक्त करने वाला सामर्थ्य बढ़ रहा है"—इस भावना पर दृढ़ रखने से मष्तिस्क में एक सूक्ष्म प्रकाश उदित होता है। यही अन्तिम स्थिति है।

नवीन अन्तर्मन का निर्माण--

मन में जो विचार या भावनाएँ दृढ़ता से चलते हैं उसी भावना या विचारों के अनुसार मस्तिष्क के नवीन अणुओं की रचना होती है। प्रत्येक नवीन विचार एक मानसिक मार्ग बनाता है। बारम्बार उसी विचार की पुनरावृत्ति उस मानसिक पथ को और भी चौड़ा बनाते हैं। दृढ़ चिंतन से नवीन अन्तर्मन के जगत् की सृष्टि होती है।

रोगी मनुष्य में रोग, व्याधि एवं निरुपयोगी स्थूल विचारों से जकड़े रहने की आदत पड़ गई है। वे नाना प्रकार की दुश्चिन्ताओं में बरबस अपने मन को लगाये रहते हैं, अन्तःकरण को शान्त अवस्था में नहीं आने देते। उसे निम्न स्थिति से उठने नहीं देते। मनुष्य की समस्त व्याधिएँ अन्तःकरण की नीच स्थिति के कारण हैं। रोगी व्यक्ति यदि अपनी तुच्छ, अधम, तुच्छ, क्षुद्र स्थिति को बदल कर उच्च स्थिति में प्रवेश करे, तो वह अपने रोग-निवारक आन्तरिक सामर्थ्य को जाग्रत कर सकता है।

दुःख से, व्याधि से, समस्त मानसिक कष्टों से मुक्ति का केवल एक उपाय है—अपने अन्तःकरण की स्थिति को उच्च बनाओ शुभ विचार, सद्-संकल्प, शुभ कल्पना, जीवन के आनन्दमय पहलू पर स्थित हो जाओ। अपने अन्तर में उतरो और निर्विकार, निरोग, अक्षय, अमर आत्मा के मङ्गल-मय दर्शन करो और दुःख की दूषित कल्पना को भस्मीभूत कर दो। रोग के प्रति अभिमुखता, व्याधि का चिंतन हमें बीमार बनाती है, उसकी विस्मृति एवं अपने अद्भुत सामर्थ्यों की कल्पना, चिंतन विश्वास रोग का नाश करती है। अपने अन्तःकरण की निर्विकारता, शुद्धता, उत्कृष्टता में श्रद्धा उत्पन्न करो और दूषित संस्कारों को बाहर फेंक दो। अपने आपको पवित्रता का केन्द्र बनाये रहो। दृढ़ता से कहो—"मलीन दुश्चिन्ताओ! तुम्हारे लिए मेरे मन मन्दिर में कोई स्थान नहीं है, तुम कैसे प्रविष्ट हो सकते हो; मैं अपनी शुद्धता एवं पवित्रता से तुम्हें क्षण भर में क्षार क्षार कर दूँगा।"

स्वयं रोगी के मन की अर्द्ध चैतन्य, चैतन्य एवं अति चैतन्य शक्तियां ही गलत मार्ग पर चल कर व्याधि उत्पन्न करती हैं, उन्हीं इच्छाओं, भावनाओं, संकेतों को स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के सही रास्ते पर चलाने से वे ही आवश्यक परिवर्तन कर रोग निवारण कर देती हैं। शरीर के विभिन्न अवयव मन के कल-पुर्जे हैं। मन ही एक स्व-सत्तात्मक तत्त्व है जो उन अदृश्य शक्तियों और

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

विचार लहरों (Thought currents) को संचालित करता है जिससे प्राय: समस्त मानसिक व्याधियां विनष्ट हो जाती हैं। आज के मनोविज्ञान शास्त्री एवं मनसोपचारक मेस्मर, जेने, फ्रायड, एडलट एवं जुंग इत्यादि की सम्मति में मानसिक व्याधियों का उपचार केवल रोगी को अपने भौतिक अस्तित्व का विस्मरण कराकर प्रेरणाओं द्वारा उच्च मानसिक और आध्यात्मिक तल पर ला खड़ा करना है। वे कहते हैं कि रोगी, चिंतन एवं मानसिक संतुलन के सच्चे रूप से अनभिज्ञ है, उसका मन एक ऐसा ड्राइवर है जिसे शरीर रूपी मशीन के सूक्ष्म पुर्जों का ठीक ज्ञान नहीं। मानसिक उपचारक रोगी को मानसिक संचालन का यथार्थ मार्ग सिखाता है।

मानसोपचारक रोगी के मन में यह बात अच्छी तरह बैठा देता है कि वह निर्विकार विशुद्ध आत्मा है। रोग, ईर्षा व्याधि से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, रोग स्वयं कोई भावात्मक सत्ता नहीं है। वह मन के कल पुर्जों को ठीक तरह न चलाने के कारण उत्पन्न हुआ मल है। रोग का कारण अपने वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञता है। वह हमारे मानसिक एवं आध्यात्मिक धरातल पर जो कुछ हो रहा है, उसका प्रभावमात्र है। यह गड़बड़, यह मलीनता अन्तःकरण में आ जमी है। पवित्र विचार पवित्र वाणी तथा पवित्राचरण से इसे धोया जा सकता है। संक्षेप में मानसोपचारक अन्तःकरण का अज्ञान दूर करके रोगी के मन में यह विचार दृढ़ कर देता है कि वह अनन्त शक्तियों का भंडार है, उसे कोई भी रोग क्यों न हो, वह अवश्य नीरोग होने जा रहा है क्योंकि प्रकृतितः रोग-निवारक शक्ति उसमें प्रकट हो रहा है। अपनी समस्त मानसिक शक्तियों को उसे इस तथ्य पर एकाग्र करने का संकेत दिया जाता है कि—"वह अच्छा हो रहा है, क्रमशः स्वास्थ्य और शक्ति खींच रहा है, शान्ति उसके अन्तर में प्रवेश कर रही है समस्त अन्तःकरण पवित्र, न्याययुक्त, और शुद्ध बन रहा है। उसका चित्त उद्वेगरहित, शुद्ध, एवं स्वच्छ है। उसके हृदय के भीतर ऐक्य और शान्ति विद्यमान है, उसे नित्य नवीन और विशुद्ध अन्तःकरण की प्राप्ति हो रही है। उसके अन्तरंग में शान्ति है। वह समस्त अवस्थाओं में परम शान्त है।"

जिस क्षण रोगी का विश्वास अन्तरात्मा की कष्ट निवारक शक्ति में जम जाता है, उसी क्षण से वह रोग व्याधि मुक्त होने लगता है। जितना ही वह हृदय के गुप्त भंडार को जागृत, उत्तेजित करता है, उतना ही सामर्थ्यवान बनता जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति की गुप्त शक्ति का भंडार आत्म-श्रद्धा है। रोगी की आत्मश्रद्धा जाग्रत होकर उसे यह भान कराती है, पूर्ण विश्वास दिला देती है कि—"तुम चेतन महोदधि में रमण करने वाले महान निर्विकार आत्मा हो। अभयादि चेतन तत्व तुम्हारे अन्दर, बाहर भीतर-सर्वत्र भरापुरा है। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप स्वयं नीरोग के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। तुम्हें केवल अन्तःस्थित परम आरोग्य का अनुभव करना है जितना ही तुम आरोग्य-विश्वास प्राप्त करोगे, उतना ही वह तुम्हारे बाह्य रूप पर, शरीर पर, अंग प्रत्यंगों पर प्रत्यक्ष हो जायगा। तुम अनुभव करोगे कि तुम नीरोग हो, सर्वथा रोग मुक्त हो, स्वस्थ्य और पूर्ण बलिष्ठ हो। तुम पूर्ण स्वास्थ्य, शक्ति, बल, वीर्य के भंडार हो।"

आध्यात्मचिंतन से रोग-मुक्ति—

अशुभ विचारों से कैसे व्याधिमय फल होते हैं, यह रोगी नहीं जानते। वस्तुतः वे मन के विषय में बिल्कुल निश्चिन्त रहते हैं और भांति भांति के दूषित विचार-कीटाणुओं की ओर किंचित् भी दृष्टिपात नहीं करते। विचार कीटाणु अशुभ विचारों के परिणाम हैं—ऐसा समझते हुए भी रोगी उस ओर प्रयत्नशील नहीं होता। दूषित विचारों को बहिर्गत नहीं करता। फिर व्याधि कैसे जाय?

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

स्मरण रखिए, नेत्र में पड़ी हुई मिट्टी न निकालने से केवल नेत्र ही क्षीण होते हैं किन्तु मन का मैल न निकालने से आजन्म असाध्य रोगों का शिकार बनना पड़ता है। जीवित ही मुर्दे की भांति काल यापन करना पड़ता है। वस्तुतः विचार-प्रक्षालन में सुस्ती करना स्वयं अपनी मृत्यु को पुकारना है। यमदूतों का आमन्त्रित करना है।

व्याधियों का प्रधान कारण दूषित विचार ही है। तुम चाहे कुछ भी दिखाई देते हो, चाहे जैसी मानसिक वेदना से पीड़ित हो, क्लान्त हो और शारीरिक एवं व्यवहारिक आदि कारण कोई भी न दिखाई देता हो. डाक्टर नब्ज, मुँह, ताप देख कर कहदे कि आप ठीक हैं किन्तु इन सबका मूल कारण आन्तरिक कष्ट रह सकता है। इनसे मुक्ति पाने के हेतु निश्चय पूर्वक उपाय करना चाहते हो, तो अयोग्य अभद्र, दूषित विचार करना छोड़ कर, शुभ विचार करना अविलम्ब आरम्भ कर दो।

जहां सब प्रकार के सन्देहों, भ्रमों, शंकाओं का अभाव है, उसी स्वच्छ प्रदेश में प्रवेश करो। ऐसा प्रदेश हमारी अन्तरात्मा है। वहां प्रवेश करने पर भ्रान्ति रहित वास्तविक सत्य स्वरूप आत्मा का अनुभव होता है। रोग व्याधि मूलतः नष्ट हो जाते है। मनुष्य को अपने निर्विकार स्वरूप का बोध होता है। आत्मा के शुद्ध विचार में निमग्न रहना, परमात्मा का ध्यान, चिन्तन, मानस पूजा करना इस प्रदेश में पहुँचने को प्रथम सीढ़ी है। अपने मन में, दूसरों में भी अशुभ न देखना प्रत्युत अन्तर वाह्य सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, और सब प्रकार की आरोग्यता पूर्ण स्वास्थ्य का ही दर्शन करना भ्रान्ति के विचार से मुक्ति पाने तथा शीतलता प्रकट करने वाली समाधान वृत्ति का उदय करने का साधन है। यह वृत्ति एकाग्रता पर अवलम्बित है। एकाग्रता की बृद्धि से मन और बुद्धि आत्मस्वरूप में लीन हो जाते हैं।

प्रिय पाठक, दुःख का चिन्तन छोड़ो, आज से सत्य, शुभ, सुख, स्वास्थ्य का ही चिंतन करो। दूसरों के साथ वाणी या मन से भी अशुभ बात न करो, या दूसरों की अशुभ बात न सुनो। केवल भलाई, सब की भलाई, स्वास्थ्य, दीर्घायु का विचार, सब में आत्मभाव का दर्शन, उत्तमता का दर्शन ही तत्त्व चिंतन है। तत्त्व चिंतन से मनुष्य समस्त दुःख एवं क्लेशों से मुक्त हो जाता है। तत्त्व चिंतन एकाग्रता से होता है। यों ही निर्द्वन्द्व मन लेकर माला फेरने से कुछ न होगा। जागृत अवस्था में प्रत्येक व्यवहार करते समय, मन के प्रत्येक विचार, वाणी के प्रत्येक व्यापार, शरीर की प्रत्येक क्रिया को तत्त्वमय कर देने का प्रतीक ही आध्यात्म चिंतन है।

परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है। मेरे अणु-अणु में उदित हो रहा है। मुझ में अमित बल स्वास्थ्य का संचार कर रहा है। मैं उसी आत्म-तत्त्व में रमण करता हूं—केवल यही विचार स्वर्णाक्षरों में स्मृति पटल पर लिख कर यदि मन के सन्मुख रक्खा जावे, और उसे पुनः पुनः देखा जावे, तो आधि-व्याधि विनाशक तत्त्व की बृद्धि होती है। आत्मा के साथ हमारा अभेद सम्बन्ध है। जो कुछ है, सब परमात्मा का है। जो परमात्मा का है, वह सब हमारा ही है। उस दैवी तत्त्व से हमारी एकता है। हमारे अभेद सम्बन्ध को अज्ञान के कारण हमने मर्य्यादित कर दिया है। उसे विशृंखल कर स्वास्थ्य, बल, प्रेम, शान्ति आदि हम प्राप्त कर सकते हैं।

मर्य्यादा के कारण ही मनुष्य को कहना पड़ता है कि—"हे प्रभु हमारा दुःख मिटा दो। रोग से निवारण कर दो" इत्यादि। यह व्यर्थ की मर्य्यादा तोड़ डालने पर आरोग्य, सुख, शान्ति एव स्वास्थ्य स्वभावतः ही ईश्वर हमको प्रदान करेगा। उसके निमित्त दीन बन कर प्रार्थना नहीं करनी पड़ेगी। परमेश्वर हमको सुख नहीं प्रदान करना चाहता—यह मान लेना भारी भूल है। ईश्वर तो परम कृपालु

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

आधुनिक मनोविज्ञान की—
रोग निवारक रीतियां।

संकेत तथा आत्म संवेत—

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों – मेस्मर जेने, फ्रायड एडलर, जुंग, क्यू ने आत्मसंकेतोपचार पर अत्यधिक जोर दिया है। इन महोदयों के हाथ में मानसोपचार अब वैज्ञानिक तथ्य हो चुका है। फ्रांस के सुप्रसिद्ध डाक्टर एमिली क्यू साहब ने वर्षों के अनुसंधान के पश्चात् जिस प्रणाली का उद्घाटन किया है, वह सर्वमान्य है तथा लाखों व्यक्ति उससे लाभ उठा रहे हैं। ब्रुकस महोदय ने एमिली साहब का बड़ा सुन्दर विश्लेषण किया है। अतः उनके अनुभवों तथा मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का निष्कर्ष हम यहां उपस्थित करेंगे।

मानसोपचार सूचना (Suggestion) तथा आत्मसूचना (Auto-suggestions) इन दो मार्गों द्वारा किया जाता है। इसमें आत्मसूचना का स्थान अधिक ऊंचा है। आत्मसूचना का प्रभाव भी अधिक तीव्र तथा चिरस्थायी होता है।

क्यू साहब के उपचार की प्रणाली:—

सर्व प्रथम क्यू साहब एक मध्यम वयस्क पतले दुबले मनुष्य की ओर अभिमुख होते हैं। इसे स्नायुदौर्बल्य (Nervousness) का भयंकर रोग हो गया है। बड़ी कठिनाई से यह चल फिर सकता है तिस पर भी इसके हाथ पांव बे तरह कांपते रहते हैं। क्यू साहब के निर्देश से वह छड़ी के सहारे से बड़ी कठिनाई से उठ कर चार छः कदम चला, फिर भी उसके घुटने मुड़े हुए थे और वह पैर जमीन से घिसटाता जाता है। क्यू साहब कहते हैं कि तुम अच्छे हो चले हो। तुमने अपने गुप्त मन में निर्बलता, निराशा, भय आदि भाव भर रक्खे थे, जिससे तुम्हारी यह दशा हो चली थी। अब तुमने इनके विपरीत शुद्ध भावों का भरना आज ही से आरम्भ कर दिया है, इससे तुम शीघ्र ही अच्छे हो जाओगे। जिस शक्ति ने तुम्हें रोगी बना दिया था, वही तुम्हें अच्छा भी कर सकती है। तुम्हें उसका उपयोग मालूम नहीं था।" इन संकेतों का आश्चर्य जनक प्रभाव हुआ और उस व्यक्ति के मुड़े हुए घुटने पुनः कार्य करने लगे।

जिस दिन का उक्त वर्णन है, उसी दिन क्यू साहब के पास मज्जातन्तु की निर्बलता (Neurasthania) के रोग से पीड़ित एक लड़की भी आई थी। उस दिन उसका तृतीय दिन था। वह १० दिन से घर पर संकेतों का अभ्यास कर रही थी। उसने मुस्करा कर कहा कि उसे बहुत कुछ लाभ हुआ है। उसकी बातें सुन कर रोगियों में नवजीवन विश्राम, तथा श्रद्धा का संचार हो उठा। पैरिस के तीन मनुष्य आये थे जो बिना लकड़ी की सहायता के नहीं चल सकते थे। उसके साथ एक सुनार भी आया था जिसका दाहिना हाथ १० वर्षों से कन्धों के ऊपर नहीं उठता था। इन सबको क्यू साहब ने संकेत (Suggestions) देकर अन्तर्मन की शक्ति को उत्तेजित कर रोगमुक्त किया।

हैं, निरन्तर प्रेमस्वरूप हैं। उनमें निरन्तर सर्व कल्याण का अटूट भंडार है किन्तु खेद, महाखेद! हम स्वयं ही सुख लेने को तत्पर नहीं हैं। अमर्य्याद परमात्मा में एक होकर हम सर्वत्र सुख नहीं देखते, स्वास्थ्य का दृढ़ चिंतन नहीं करते। अतः सर्वव्यापी ईश्वर हमें व्याधि देते हैं।

हमें चाहिए कि हम उस निर्विकार दैवी सत्ता से अधिकाधिक सम्बन्ध जोड़ें। उसके समीप जाने का प्रयत्न करें। जो परमात्मा की ओर शीघ्रता से दौड़ता हुआ जाता है, सुख, स्वास्थ्य, शक्ति, उसकी ओर भागे चले आते हैं।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

इसके अनन्तर क्यू साहब ने रोगियों को आत्म-चिकित्सा का सिद्धान्त समझाया और थोड़े से रोगियों को लेकर नहीं सप्रमाण सिद्ध करके भी दिखा दिया। संक्षेप में उन्होंने कहा—(१) प्रत्येक भावना जिसके चिंतन से ही हमारा मन पूर्ण रूप से निमग्न हो जाता है—हमारे शारीरिक, भौतिक अथवा मानसिक स्थिति में तद्रूप परिवर्तन अवश्य उत्पन्न कर देता है। (२) उस भावना को दूर करने के लिए जितना ही हम ऊपरी मन से प्रयत्न करते हैं, उतनी ही दृढ़ता से उसकी और जड़ जमती है।

क्यू साहब दो प्रकार के संकेत (Suggestions) रखते थे। सब रोगियों के लिए एक तो सामान्य सूचनाएँ (General Suggestions) इनके पश्चात् वे प्रत्येक रोगी को क्रमशः उसके रोगानुकूल विशेष (Special) सूचनाएँ देकर उपचार करते थे। उनकी प्रणाली आत्म-सूचनाओं की है। वे समस्त रोगों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की सूचनाएँ देकर रोगियों को भला चंगा कर देते थे। उन सूचनाओं से रोगियों का सोया हुआ विश्वास, अपनी शक्तियों के प्रति श्रद्धा जागृत हो जाती है और वे भले चंगे हो जाते हैं।

श्री उमादत्त जी पांडे ने, आत्मसंकेतोपचार को निम्न भागों में विभाजित किया है। (१) स्वेच्छिक, (२) अनैच्छिक, (३) स्वेच्छिक अनैच्छिक। अपने आपको इष्ट कार्य, बात या वस्तु के लिए अधिकार पूर्वक हिदायत देना आत्म संकेत है। हमारे इनसंकेतों का प्रभाव सीधा गुप्त मन पर पड़ता है। इन संकेतों द्वारा अद्भुत प्रतिक्रिया उत्पन्न होतीहै और व्यक्तित्व का पुनर्निमाण होता है। संकेतों से स्वभाव तक में परिवर्तन हो सकता है, भूत, प्रेत, का भय भगाया जा सकता है। श्री उमादत्त जी अपने अनुभवों द्वारा निम्न निष्कर्मों पर पहुंचे हैं:—

(१) जब तक हमारा मन किसी सूचना (Suggestion) को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं कर लेता, तब तक वह वास्तविक रूप धारण नहीं कर सकता। संकेत स्वीकार हो जाना चाहिए।

(२) प्रत्येक भावना जो हमारे मन में आती है, उसको यदि अन्तर की अचेतन वृत्ति ग्रहण कर लेती है, तो वह हमारे जीवन की एक स्थायी वृत्ति हो जाती है। स्वेच्छित आत्म संकेत इसी रीति का नाम है।

(३) संक्षेप में, आत्म-संकेतोपचार में केवल दो ही बातें होती हैं। (अ) भावनाओं को रोगी के मन में प्रविष्ट कराना तथा। (ब) आन्तर की अचेतन वृत्ति का उन्हें ग्रहण (Accept) करके वास्तविक रूप धारण करना। ये दोनों बातें अचेतन मन द्वारा ही सम्पन्न होती हैं।

मानसोपचारक की सफलता का रहस्य यही है कि वह अपने संकेतों को अन्तस की अचेतन वृत्ति द्वारा ग्रहण (Accept) करा दे। यदि हम ग्रहण कराना सीख लें (जो दीर्घ कालीन अभ्यास द्वारा प्राप्त होगा) तो हमने पूरा मार्ग तय कर लिया। आत्मसूचनाओं में विश्वास, उनको सचाई. प्रबलता वृत्ति का उसमें पूर्ण स्थिर हो जाने पर ही अंतस की अचेतन वृत्ति उन्हें ग्रहण करती है। बाह्य भावना का तिरस्कार या ग्रहण अन्तःकरण को प्रवृत्ति पर निर्भर है। यदि सूचनाओं में संशय रहा तो रोगी मनुष्य से स्वास्थ्य की भावना का कैसे ग्रहण कराया जा सकता है? अतः सूचना देते समय सब प्रकार के संशय निकाल कर पूर्ण विश्वास से जबरदस्ती चेतन विरोधी तक वितर्कों के विपरीत अपनी इष्ट भावना को अन्तस की अचेतन वृत्तियों द्वारा ग्रहण करा देना चाहिए।

आत्म संकेत का प्रयोग—

आत्म संकेत (Auto-suggestions) में रोगी स्वयं अपने आपको संकेत देता है। वह दूसरों के संकेत न लेकर अपने संकेत स्वयं बनाता,

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उच्चारण करता और उन्हें अन्तस् की अचेतन वृत्ति द्वारा ग्रहण कराता है। वह अपनी श्रद्धा तथा विश्वास को उत्तेजित कराता है वह जिन संकेतों का उच्चारण करता है, कालान्तर में वे ही उसके स्वभाव के अङ्ग विशेष बन जाते हैं और वह रोग मुक्त हो जाता है। इस विधि से पूर्ण लाभ उठाने के लिए हमारी प्रसिद्ध पुस्तक "महान जागरण" पढ़िये।

आत्म पोषण (Self-Assertion)—

हम शरीर नहीं. वरन आत्मा हैं। हममें ईश्वरीय सत्ता है, यही हमारा परम पवित्र स्थान है, यही पूर्ण स्वास्थ्य, शान्ति, सुख का अक्षय भंडार है। यदि हम प्रत्येक कामना को विचार को, मनोभावों को इस अन्तरात्मा की दैवी शक्ति का पूर्ण आज्ञाकारी बनादें तो हम पूर्ण स्वस्थ रह सकते हैं। जब मनुष्य उच्च सत्ता—अन्तरात्मा—की शरण लेता है, निरन्तर उसी में रमण करता है, तो उसकी सब चिंता, व्याधि दूर होती है। ज्यों ज्यों मनुष्य की श्रद्धा अपनी पवित्र आत्मा, निर्विकार आत्मा में दृढ़ होती जाती है ज्यों ज्यों वह पराशक्ति से तदाकार करता जाता है त्यों त्यों उच्च मनः भूमिका में प्रविष्ट होता जाता है।

सदाग्रह का तर्क (Persu)—

बीमार में रोग-निवारक सामर्थ्य दृढ़ करने के लिए कुछ चिकित्सक उसे तर्क वितर्क (Facts and arguments) द्वारा फुसलाते हैं। इस मानसिक क्रिया में उपचारक को अनेक दलीलें पेश करनी पड़ती हैं, क़ायदे क़ानून से मन को स्वास्थ्य एवं बल की दिशा में झुकाना पड़ता है। इसे मानसिक तर्क कह सकते हैं।

मन किसी बात को यों ही स्वीकार नहीं कर लेना चाहता। अन्तर्मन यह चाहता है कि आप उसके सामने दलीलें पेश करें हर बात को समझावें, क़ायदे-कानूनों का उल्लेख करें, तब वह अपनी दूषित बातों को त्याग कर नवीन मार्ग ग्रहण कर सकता है।

मान लिया कि आप उद्वेग से पीड़ित हैं और ठीक होने के लिए मानसिक तर्क की प्रणाली का अनुसरण करना चाहते हैं। आप इस प्रकार दलीलें दीजिए—

"मैं जान गया हूं कि मन की चंचलता ने मुझे कितना नाच नचाया है। आज मेरी ज्ञान की आंख खुल गई है। जीवन निर्माण की कला में दृढ़ता की कितनी आवश्यकता है—यह मेरी समझ में आ गया है। आज तक कोई भी व्यक्ति क्षण क्षण उद्विग्न होकर आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सका है। मुझ में आत्माग्नि प्रज्वलित हो गई है। बड़े बड़े प्रलोभन, पाप, भय और सन्देह दृढ़ता के सन्मुख दूर हो जाते हैं।"

अनेक प्रकार की युक्तियां देकर मन की प्रवृत्ति रोग, शोक दोष, आधि व्याधि संताप, आतुरता, खिन्नता. उद्विग्नता से मोड़ दो। उसके समक्ष ऐसी ऐसी दलीलें पेश करो कि वह शान्त होकर दुःख चिंताएँ शोक, संताप, पश्चाताप, निराशा से हट कर मंगलमय भविष्य, स्वास्थ्य, बल, माधुर्य, अखण्ड आनन्द में लीन हो जाय, ईश्वरीय मार्ग पर आरूढ़ हो जाय। अपने भीतर के गुप्त प्रदेश में, जहां सर्वत्र निर्मलता. पवित्रता, शुद्धता, कल्याण, पूर्ण शान्ति है—प्रवेश कर जाय। एक बार आत्मनिष्ठ का, आत्मा में रमण करने का आनन्द चखने के पश्चात् वहां से हटने का नाम न लेगा। मन बड़ा नटखट है। जब तक इस शैतान को खूब न समझाओ, तब तक सदाग्रह पर न आयेगा।

जब जब मन व्यग्र हो उठे, या तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि रोग तथा व्याधि में लीन होता जा रहा है, तब तब आप अपने आन्तरिक विश्वास को जाग्रत कीजिए। यह संकेत दीजिए—

'मेरी शक्तियां वैसा ही कार्य करेंगी, जैसा मैं उन्हें आज्ञा दूंगा। वे स्वभावतः उन्हीं वस्तुओं को

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

उत्पन्न करेंगी, जिनकी चाह मैं उनसे करता हूं। मेरी शक्तियो ! मैं तुमसे बल मांगता हूं । तुम मुझे बल दे रही हो मुझे शक्तिशाली बना रही हो। सफलता के परिमाणुओं को आकर्षित कर रही हो। तुम्हारे ही कारण मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति विजय की ओर झुकी हुई रहती है।"

जितना ही आप उचित तर्क उपस्थित करेंगे, उतना ही मन की अचेतन वृत्ति आपकी सूचनाओं को ग्रहण करेगी। मन को बार बार समझाओ। अपनी चिन्ता उसको वृत्ति ठीक रास्ते पर लाने में व्यय होनी चाहिए। रोग से मुक्त होने के लिए आपके मन तथा सद्बुद्धि में सामंजस्य स्थापित होना अनिवार्य है।

स्वीकृतियां तथा अस्वीकृतियाँ--

आपके संकेतों के दो रूप हो सकते हैं- आप कह सकते हैं " मैं रोगी नहीं हूं " तथा " मैं रोग मुक्त हूं "-- दोनों का अर्थ एक ही है किन्तु इन दोनों प्रकार के संकेतों का दो प्रकार प्रयोग होना चाहिए। पहिले आप तमाम व्याधियों को अस्वीकृत कर दीजिए। अयोग्य मकान को तोड़ फोड़ कर ही, नई इमारत खड़ी की जा सकती है। युग युग के संकलित झूठे विध्वंसकारी विश्वासों, कल्पनाओं, दूषित संस्कारों को निकाल कर ही, नए सिरे से अन्तर्मन का निर्माण हो सकता है।

आप अमंगल, रोग, शोक, व्याधि का अपने ऊपर प्रभाव अस्वीकार कर दीजिए। उसकी शक्ति को न मानिये। यदि आप उसकी वास्तविकता अस्वीकार कर दें, और अपने ऊपर उसके प्रभाव को पड़ता हुआ न मानें, तो आपके ऊपर उसकी शक्ति न रह जायगी, रोग स्वयं भाग खड़ा होगा।

अस्वीकृतियों की यह रीति है--आप कहिए मेरी आत्मा मेरी शुद्धबुद्धि किसी भी रूप में रोग व्याधि को स्वीकार नहीं करती क्योंकि उनकी सत्ता नहीं, अतः उनकी शक्ति भी नहीं हो सकती। मेरे ऊपर आधिव्याधि का जादू नहीं चल सकता। मैं उसे हृदय से मन से अपने आन्तरिक स्तर से अस्वीकार करता हूं। मैं नहीं मानता कि मैं रोगी हूँ, मैं अस्वीकार करता हूं कि मैं कमजोर हूँ। मेरे ऊपर आधिव्याधि का किसी भी रूप में अधिकार नहीं है।"

इस प्रकार हम अमंगल की सत्ता को अपने ऊपर अस्वीकार करके मन के अयोग्य संस्कारों को विध्वंस करते हैं। किन्तु अमंगल का अस्वीकार करना सिर्फ आधा काम है। नव सृजन के निमित्त आप कुछ संस्कार स्वीकार भी कीजिए। इन संस्कारों पर आप अपने स्वास्थ्य, शान्ति, आनन्द का सुन्दर महत्व निर्माण कर सकते हैं। आप स्वीकार कीजिए कि आप परम शक्तिशाली आत्मा हैं। आपके अन्दर सब कुछ परम मंगलमय शुद्ध, पवित्र, ही है। आप स्वीकार कीजिए कि आप पूर्ण स्वस्थ नीरोग, उत्फुल्ल हैं, परमात्मा के राजकुमार हैं, आपकी शक्तियां अनेक इन्द्रवज्रों से बढ़ी चढ़ी हैं। आप अपने को अनन्त जीवन मानिये, स्वाधीन, स्वतंत्र, परम विशुद्ध स्वीकार कीजिए। आप प्रतिदिन सायंकाल अथवा प्रातःकाल शान्त चित्त होकर एकान्त स्थान में नेत्र मूंद कर बैठ जाओ और सब प्रकार के विचार हटा कर निम्न स्वीकृतियां (Assertions) दो:--

"मैं निर्लेप आत्मा हूं। मैं शरीर के रोग, शोक, आधि, व्याधि, क्लेश, अहंकार, ईर्षा, काम क्रोध से ऊपर उठा हुआ तेजपुंज हूं। मैं अपने निर्विकार शुद्ध स्वरूप में स्थिर रहता हूं। मैं स्वास्थ्य स्वरूप आत्मा के ध्यान में निरत रहता हूं। मेरे भीतर शक्ति का सागर उद्वेलित हो रहा है। मैं पवित्र आत्मा में ही रहता, चलता, फिरता और निज अस्तित्व रखता हूँ।

आपकी इन स्वीकृतियों में श्रद्धा हो। विश्वास भरा हो। एक एक शब्द में आपका अखंड अचल विश्वास हो। जैसे जैसे ये स्वीकृतियां अन्तर्मन में

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

बैठती जायेंगी वैसे वैसे तुम बलिष्ठ और नीरोग होते जाओगे। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति में स्वीकृति की शतांश बलशालिनी कोई औषधि नहीं है। एक ज्ञानवान् श्रद्धावान, आत्म-विश्वासी पुरुष की जानकर की हुई (Intentional) स्वीकृति अविरोध्य है। इसका प्रभाव अनेक झगड़ों के होते हुए भी आन्तरिक तह तक होता है।

वासनाओं की समुन्नति एवं परिष्कार—

अस्वभाविक रूप से रोकी हुई वासनाएँ निरंकुश होकर व्याधियां उत्पन्न करती हैं। आप वासना (Passion) को अतृप्तावस्था में दबा नहीं सकते। दलित वासना, अतृप्त पिपासा, दुराचार में परिणत होकर मनस्ताप उत्पन्न करेगी। वासना का कभी नाश नहीं होगा। जब तक हम पशु हैं तब तक वासनाएँ भी हमारे साथ हैं। कितने ही व्यक्ति अविवाहित रहने का प्रण कर डालते हैं या सांसारिक विराग धारण कर अपनी इच्छाओं, वासनाओं को बुरी तरह कुचलते हैं। वासना के मार्ग में रुकावट डालना अत्यन्त अप्राकृतिक कार्य है।

उचित यह है कि निर्णय करके वासना का मार्ग किसी दूसरी दिशा में मोड़ दें। उसे परिमार्जित करें। उसमें से गन्दगी निकाल दें। वासनाओं के परिष्कार का मार्ग नैतिक दृष्टि से उत्तम है। इससे आन्तरिक संघर्ष नष्ट होता है। मनुष्य को आन्तरिक क्लेशों से बचने के लिए अपनी प्रकृति में, अपनी आत्मीयता में, अपने आप में स्थिर होना चाहिए।

आप अपनी वासनाओं का मार्ग भक्ति के रूप में खोल सकते हैं। छोटे छोटे जानवरों, पक्षियों, फूल, पेड़ बेल इत्यादि में अध्ययन मनन में, कला के विभिन्न रूप जैसे चित्रकारी संगीत, काव्य, लेखन, पच्चीकारी, नृत्य, परोपकार, पूजन, धर्म प्रसार, उपदेश इत्यादि के अनेक भागों में आप अपनी कुत्सित वासनाओं की कल्मष धो सकते हैं। किसी ललित कला को लेकर अपना सब कुछ उसमें उड़ेल दीजिए।

परिष्कार के लिए लोक संग्रह का कार्य परम पुनीत है। हम जो कुछ भी करें, उसी में लिप्त न रह कर उन्हें भगवान के अर्पित करें। प्रत्येक कार्य को भगवान का समझ कर ही करें। अपने आप को भगवान् के हाथ का एक औजार मात्र समझें। हम जो कुछ करते हैं—वही कराता है, ऐसी भावना बड़ी परिष्कारणी है।

निष्काम मन से परोपकार, जनता की सेवा में प्रवृत्त हो जाइये। निष्काम कर्म के आचरण से मन में किसी प्रकार का स्वार्थ, ईर्षा द्वेष, प्रलोभन नहीं रह जाता। सकर्म कर्म वाला मनुष्य विविध इच्छाओं से वशीभूत होकर अनेक प्रमादों में फँसता है किन्तु निष्काम कर्म वाले का दिव्य हेतु केवल परमात्म तत्त्व की प्राप्ति ही रहती है। वस्तुतः वह सिद्धि असिद्धि, दुःख क्लेश में भी एक सा बना रहता है सांसारिक कामनाओं में लिप्त न रहने के कारण उसे दुष्ट मनोविकार अधिक नहीं सताते। इस विषय में श्री गीता जी का वचन स्तुत्य है—

'समत्व बुद्धि वाला मनुष्य पुण्य तथा पाप को इसी लोक में त्याग देता है। अर्थात् उनमें लिप्त नहीं होता। अतः समत्व बुद्धि योग के लिए आवश्यक है। यह समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मों में चतुरता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है।" (गीता २।४६)

वासनाओं की यह समुन्निति (Sublimation) ही मानसिक रोगों से मुक्ति पाने का सर्वोत्तम मार्ग है। यह मार्ग प्राकृतिक भी है। इससे विरोधी भावों की उत्पत्ति की किंचित् भी आशंका नहीं। इस प्रकार वासनाओं के निरोध से चाह नहीं बनी रहती और न वासना को अवरुद्ध होकर अनियन्त्रित विकृत मार्ग से फूट कर उलझन उत्पन्न करने की आवश्यकता रहती है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

इसी प्रकार दूषित मनोवृत्ति को अपने स्थान से हटा कर नवीन वृत्ति (Displacement) भी अच्छा उपाय है। इसमें अन्य सब बातों को भूल कर केवल एक ही में दत्त चित्त हो जाना पड़ता है। हमारी समझ में परमार्थ का मार्ग अनुसरण करना सर्वोत्तम उपाय है। धर्म बुद्धि एवं मैत्री भावना के आभास से व्याधियां उत्पन्न ही नहीं होती।

अतः जब कोई मूल प्रवृत्ति प्रकट होना चाहे तो लोक मर्यादा की रक्षा करते हुए उसे प्रकाशित होने और तृप्त होने का अवसर प्रदान करना चाहिए। दबाने की अपेक्षा उसे प्रकट करने के परिमार्जित रूप सोचने चाहिए। ऐसा करने से हम प्रकृति के साथ अन्याय न करेंगे और हमारा अव्यक्त, व्यक्त मन से सामंजस्य प्राप्त कर लेगा। संगीत वासनाओं का शोध करता है। अनेक व्यक्ति बालकों को पढ़ाने लिखाने में, उनके साथ हँसने खेलने में, लोरी देने में, पूजा पाठ, टहलने, फुलवारी आदि से वासनाओं का शोध करते हैं। यह मार्ग नीति धर्म के अनुकूल हैं इन सभी से वासनाओं का शोध करना चाहिए।

सुख संसार की किसी भी वस्तु में नहीं है, इसलिए वह किसी भी बड़े से बड़े वैभव द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। सुख तो मन की एक स्थिति है जो आत्म साधन द्वारा प्राप्त होती है।

× × ×

अधिक बकवाद करना और अधिक विचार करना अनावश्यक है। जिसके ज्ञान संचय का क्रम ठीक नहीं वह जितना ही अधिक विद्वान बनेगा उतना ही अधिक भ्रम में पड़ेगा।

× × ×

जब रोना हो तो एकान्त की तलाश करो, और जब हँसना हो तब मित्रों में जाओ।

× × ×

मनोविश्लेषण द्वारा रोग-निवारण।

नवीन मनोविज्ञान का सन्देश है कि रोगी की चिकित्सा मन में संचित विषैले एवं दूषित संस्कारों (Impressions) से करो। रोग की जो जड़ें अव्यक्त मन में मानसिक भावना ग्रन्थियों के रूप में विनिर्मित हो गई हैं, उन्हीं का उन्मूलन करने से चिर स्थायी आन्तरिक शान्ति की आशा की जा सकती है।

मनोविश्लेषण (Psycho-Analysis) हमें बताता है कि रोगी के मन की जांच करो। उसमें वर्षों के संचित अप्रिय कटु, संस्कारों को ढूँढ़ो, कुचली हुई आशाएँ, मनोरथ, दलित वासनाएँ, ईर्षा, द्वेष, अत्याचार, दूषित कल्पना, अभद्र विश्वासों, रूढ़ियों, चिरकाल के एकत्रित अवरुद्ध विचारों, हसरतों, अरमानों, को छांट छांट कर देखो भालो। और मालूम करो कि रोग उत्पन्न करने वाला, उपद्रवी संस्कार कौन सा है? मनोविश्लेषण क्रिया एक प्रकार की रेचन-क्रिया है। जैसे रेचक द्वारा सब संचित मल बाहर फेंक दिया जाता है, वैसे ही मन के रेचन द्वारा आन्तरिक स्थिति का ज्ञान किया जाता है। मनोविश्लेषण से मानसिक व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। किन्तु मनोविज्ञान का पहिला प्रश्न यही रहता है—क्या तुमने अपने रोगी को भली भांति देख समझ कर परख लिया है। वह कहता है कि चिकित्सा के पूर्व जब तक तुम रोगी के अव्यक्त मन में प्रस्तुत चिर संचित वासनाओं, दलित मनोवृत्तियों से भली भांति परिचित न हो जाओ, तब तक अन्य कुछ भी औषधि का प्रयोग न करो। रोगी के मन का सम्यक् अध्ययन किए बिना, उसके पेट में दवाइ उड़ेलना ऐसा ही है जैसे बिना दिशा साधे हुए तीर फेंकना।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

मानसोपचारक मन का विश्लेषण करता है किन्तु मन अन्य वस्तुओं की तरह बाहर मेज पर निकाल कर नहीं रक्खा जा सकता। वस्तुतः वह रोगी को अपनी आत्मीयता के अन्दर ले लेता है तथा उससे निर्भय रूप से गुप्त से गुप्त बातें करता है। वह मन के सात पर्दों के पीछे मे भी छुपी हुई इच्छा को ढूँढ़ निकालना चाहता है। अतः जब तक वह मर्म भेदी, तीव्र दृष्टि वाला न बने, तब तक उसका कार्य नहीं चल सकता। मनोवैज्ञानिक रोगी को व्याधि के लक्षणों को समझाता है। इसी समय वह रोगी से अपने पूर्व जीवन की महत्त्व पूर्ण घटनाओं को स्मृत पट पर लाने को कहता है। वह उस अपनी गुप्त से गुप्त बातें करने को उत्साहित करता रहता है। मनोविश्लेषण में रोगी को बोलने, बातें करने, अपने विगत कटु अनुभव सविस्तार सुनाने, अपने दृष्टिकोण को समझाने की पूरी पूरी आजादी दी जाती है।

मानसोपचारक बात बात में रोगी के मर्मस्थल को टटोलता, समझता, पूछता रहता है। उसके प्रश्न बड़े तीखे और दूर तक खोजने वाले मर्म भेदी होते हैं। वह रोगी को संदेह नहीं होने देता। अन्यथा रोगी कदापि अपना दिल उपचारक के सामने न खोलेगा। अतएव चिकित्सक को बड़े कौशल (Tactfully) काम लेना पड़ता है। वह रोगी को विश्वास दिलाता जाता है कि उसके गुप्त रहस्यों को किसी पर प्रकट न होने देगा।

कौनसी बात छिपाई गई है ?

विशेषज्ञ को यही ढूँढ़ना पड़ता है। छुपी हुई भावना ग्रन्थि (Complex) को ढूँढ़ निकालना ही इस चिकित्सा की आधार शिला है वह विभिन्न प्रश्न समूह द्वारा यह देखना चाहता है कि अव्यक्त प्रदेश में कौन सी बात छुपा है, कौनसी घटना को रोगी छिपाने का प्रयत्न कर रहा है। बात कहते कहते कहां पर आकर रोगी आनाकानी करता या रुक जाता है, किस विषय पर बहस नहीं करना चाहता। उपचारक को अव्यक्त प्रदेश में विनिर्मित संस्कारों वासनाओं, स्थितियों, अरुचिकर प्रसंगों, खिन्नता उत्पन्न करने वाली बातों या व्यक्तियों का पूरा चिट्ठा बनाना होता है। अतः वह पुनः पुनः अनिच्छा से जानने वाले विचारों को दुहरा कर रोगी के मन की जांच करता है। अपनी रामकहानी तथा अनुभव स्मृति-पटल पर लाते लाते रोगी के मन से प्रसुप्त संस्कार निकल आता है।

चित्त विश्लेषक इन भावना ग्रन्थियों को सुलझा कर ही रोग की जड़ दूर करते हैं! इन भावना ग्रन्थियों का कारण ही ढूँढ़ निकालना कठिन है। पुराने अनुभव याद कराने से जब प्रसुप्त संस्कार निकल आता है तो वह मानसिक ग्रन्थि खुल जाती है।

एक विश्लेषण का उदाहरणः—

कुछ वर्ष पूर्व डाक्टर दुर्गाशंकर जी नागर के पास एक रोगी सज्जन आये, उनके बाएँ हाथकी मुट्ठी बँधी हुई रहती थी और कभी कभी दो तीन घंटे के बाद वे ऐसी चेष्टा करते थे मानों किसी को बड़े रोष में मुक्का मारने वाले हैं। इस चेष्टा से वे बड़े परेशान थे। आफिस में उनको इस चेष्टा का दौरा उठ जाता था तो वे बड़े क्लान्त होते थे। मनोविश्लेषण में उनसे अपने जीवन की विशेष विशेष घटनाओं को स्मृति-पट पर लाने को कहा गया, अनेक प्रश्न पूछे गए!

कई वर्ष पूर्व का एक घटना का बिजली का सा प्रसारण उनके दिमाग में आया और वे कहने लगे कि—"एक मित्र ने मेरा बड़ा अपमान किया था। उसका मुँह तक देखना नहीं चाहता था। उसकी स्मृति आते ही मेरा शरीर जकड़ जाता था। उसके प्रति विद्वेष की भावना से मेरे मन में उसको ताड़ने की इच्छा बनी रहती थी। मेरे बाएँ हाथ की मुट्ठी बँध जाती थी और उसके मानसिक चित्र पर मैं

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

प्रहार करने लगता था। यह घटना तो मस्तिष्क के किसी कोष्ठ में विस्मृति के गर्त में चली गई . घटना का भाव तक न रहा किन्तु आठ मास बाद बाएँ हाथ की मुट्ठी बँधी रहने लगी और किसी को मुक्का मारने की भावना सताने लगी।

यह घटना अव्यक्त से व्यक्त मन पर आते ही उनकी आदत कम होती गई। नित्यप्रति नियमित रूप से ध्यान के समय, उन्होंने, अपने अपमान करने वाले विपक्षी के प्रति प्रेम और क्षमा भावना से हृदय के उद्वेग को पूरा कर दिया, जिसको वर्षों से दबा कर रक्खा था। अन्तःकरण के अन्तःस्थल भाग से विरोधी भावना हटते ही कसी मुट्ठी बांध-कर प्रहार करने की कुचेष्टा कुछ दिनों में ही स्वयं बन्द हो गई और वर्षों से जिस रोग से वे पीड़ित थे, उससे मुक्त हो गए। यह मनोविश्लेषण की महिमा है।

प्रत्येक बेढंगे व्यवहार, गाली गलौच, कुत्सित आदतें, सनक विशेष प्रकार की भावना ग्रन्थियों के कारण उत्पन्न होती हैं और मनुष्य इन बुरी आदतों को छोड़ना चाहते हुए भी इनसे मुक्त नहीं हो पाता। कुछ बालकों में क्लिपेटोमेनिया अर्थात छोटी छोटी चीजें चुराने की आदत होती है। ऐसी आदतें बालक पर अत्याचार करने से नहीं छूटती. ये तो उस व्यक्ति का मनोविश्लेषण करने तथा भावना ग्रन्थि के विपरीत सद्‌गुणों को प्रविष्ट कराने से छूटती हैं। इसी प्रकार डींग मारने, झूठ बोलने, बकवास करने, लड़ाई झगड़ा करने, क्रोधित होने की आदतें भावना ग्रन्थियों के खोलने से दूर होती हैं। प्रत्येक बुरी आदत से सम्बद्ध ग्रन्थि को खोलना ही चिकित्सा है।

हेडफील्ड साहब का मत--

बुरी आदतों का उन्मूलन करने के लिए उससे संयुक्त विकृत संवेग का विनष्ट होना अथवा मानसिक गाँठ का खुल जाना अति आवश्यक है। इस विषय पर हेडफ़ील्ड साहब का मत है--"मानसिक चिकित्सा में कि जब उसी भावना ग्रन्थि को पूर्णतः नष्ट कर दिया जाता है, तत्सम्बन्धी कुत्सित आदत भी उसी भांति दूर हो जाती है जिस प्रकार विद्युत का आलोक बिजली के प्रवाह की धारा तोड़ देने पर समाप्त हो जाता है। यदि आदत न हटे, तो यह समझना चाहिए कि मानसिक ग्रन्थि अभी तक विद्यमान है।" हेडफ़ोल्ड साहब का मत बड़े महत्त्व का है। उससे विदित होता है कि मानसिक चिकित्सा में ग्रन्थि की खोज के लिए अनेक सप्ताह अथवा महीने लगें किन्तु एक बार मानसिक जड़ को खोज लेने पर उसका निराकरण होने पर बुरी आदत या रोग व्याधि समूल दूर हो जाती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण धार्मिक परिवर्तनों में स्पष्ट देखा जाता है। बड़ा से बडा पापी भी एक आकस्मिक परिवर्तन से पुण्यात्मा बन जाता है। और यकायक अपनी गर्हित आदतों को ऐसा त्याग देता है जैसे उसमें वे प्रस्तुत ही न थीं। यह नियम शारीरिक आदतों, कष्टों की अनुभूति, तथा अकारण भय आदि के लिए भी लागू होता है। सेंट पाल एवं महर्षी बाल्मीकि के उदाहरण उक्त मनोवैज्ञानिक नियम के ज्वलंत उदाहरण हैं।

व्यक्त तथा अव्यक्त का सामंजस्य--

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का मूल अभिप्राय मन के व्यक्त (Conscious) तथा अव्यक्त (Unconscious) भागों में सामंजस्य (Hormony) करा देना है। इस मेल के लिए महीनों तक प्रयत्न चलता है। अन्त में रोगी की मानसिक ग्रंथि मिल जाती है और फिर उस ग्रन्थि के विपरीत प्रेम, दया, मैत्री, कृपा, की भावनाओं के अनगिनत संकेत दिये जाते हैं। 'मेरा कोई शत्रु नहीं है। सांसारिक बाधाएँ, दुःख, अज्ञान, भय, जड़ता, दीनता, मुझे तंग नहीं कर सकते। मेरा मन मलीन नहीं रहता मेरे हृदय में विश्व प्रेम, मातृभाव. दैवी सम्पदा का भंडार खुल गया है। मैं आरोग्यता

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

पागलपन का मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण तथा निवारण।

(ले०—डा० विश्वमित्र जी वर्मा, मानस चिकित्सक)

पागलपन विविधि लक्षण—

पागलपन अन्य शारीरिक रोगों की तरह कोई प्रधान रोग नहीं है. इसके लक्षण अनेक हैं, कारण भी अनेक हैं, तथा तज्जनित मानसिक एवं व्यवहारिक क्रियाएँ भी अनेकानेक हैं।

स्व+स्थ अर्थात् एकाग्र, आत्मनिष्ठ अपने मार्ग पर लगा हुआ मन ही दुरुस्त है किंचित भी इस अवस्था के विपरीत विचलित अथवा विकृत होते पर वह पागल, भ्रान्त कहलाने योग्य है।

पागलपन में मन की ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति न तो पूर्णतः स्वस्थ मन वाला होता है, न वह अस्त व्यस्त ही होता है। वह दोनों अवस्थाओं के मध्य की स्थिति है! थोड़े समय के लिए त्रिशंकु की भांति अधर में, न बाहर न भीतर, न सोया हुआ, न जगा हुआ रहता है मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं में कोई अचानक स्फुरण अथवा विचारों में अकस्मात् अज्ञात प्रेरणा होने से कुछ समय के लिए एक "अर्द्धानिद्रित जागृत" सी अवस्था होती है कि वह स्वयं कुछ विचार नहीं कर सकता परन्तु कुछ का कुछ करने लगता है और नहीं जानता कि मैं क्या कर रहा हूं अथवा क्यों कर रहा हूं। वह अपने आपे में नहीं रहता, न उसे होश होता है, न बेहोशी। वह कुछ बतला नहीं सकता कि मुझे क्या होगया, क्यों कर हो गया, कब हो गया?

यदि हम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पागलपन, भ्रम, सनकीपन आदि अनेक प्रकार की गड़बड़ी का कारण ढूंढ़ें तो पता लगेगा कि मनुष्य के मस्तिष्क के किन्हीं केन्द्रों अथवा भिन्न भिन्न भागों में कमजोरी आ जाने से अथवा समुचित भोजन, संयम, व संसार से वीतराग होने का बनावटी अभ्यास की न्यूनाधिकता से परिपक्वता न आने से मनुष्य के विचारों की वृत्ति बातचीत व्यवहार का ढंग, आदर्श, अपेक्षाकृत बेढंगे, अनोखे, अनुचित एवं असंगत जान पड़ते हैं। ऐसा व्यक्ति यथार्थ रीति से बातचीत या कार्य नहीं कर सकता अतः मूर्ख (या पागल) कहा जाता है। यह विकृति दो प्रकार की होती है—स्वाभाविक कमजोरी, दूसरी जानबूझ कर।

स्वभाविक अथवा जन्म से ही कमजोर दिमाग वाला व्यक्ति तो क्षीण है ही, कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो कुछ बातचीत तो ठीक कर लेते हैं, परन्तु पढ़ लिख नहीं सकते, याद नहीं रख सकते, हिसाब नहीं लगा सकते। कुछ इस अवस्था से ऊँचे उठ जाते हैं तो उनमें धारणा शक्ति नहीं आती, वे ज्ञान वृद्धि नहीं कर पाते अर्थ उपार्जन नहीं कर सकते, सफल नागरिक नहीं बन सकते। ये भिन्न भिन्न प्रकार की मानसिक न्यूनताएँ मस्तिष्क के भिन्न भिन्न प्रकार के क्रिया केन्द्रों की समुचित परिपक्वता न होने के कारण होती है।

स्वास्थ्य, प्रेम, सुख, शान्ति की लहरें ही मित्रशत्रु सबके लिए भेजता हूं। विश्व के समस्त प्राणी सुखी हों, अभय हों, फलें, फूलें। संसार में मेरा कोई द्वेषी नहीं। सब मुझसे प्रेम करते हैं।" ऐसी अनेक सुख शान्ति, मैत्रीभाव की प्रेरणाएँ देकर रोगी के मन को पुनः अपनी प्राकृतिक स्थिति में कर दिया जाता है। जितने ही शुद्ध अन्तःकरण से बारम्बार संकेतों की पुनरावृत्ति की जाती है, उतना ही स्थायी लाभ होता है। शुद्ध स्वास्थ्य की भावनाएँ मन में जमने से मन भावनाओं जैसा ही रूप ग्रहण कर लेता है। वह तद्रूप बन जाता है। यह मन का कायाकल्प है।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

दूसरे पागल वे हैं जिनका मन पहिले तो ठीक था किन्तु स्वयं अपने विचारों, अथवा अनुभव के विरोधी आघातों से क्रमशः मानसिक क्षीणता एवं वक्रता को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य 'सठिया' जाता है, वही अवस्था कुछ युवकों में मानसिक ह्रास से आती है। इस श्रेणी में कुछ विद्वान् भी हैं जो युवावस्था में ही इस पागलपन का प्रदर्शन करने लगते हैं। विचारों की विकृति, भावनाओं व अनुभव तथा प्रसुप्त वासनाओं के विद्रोह से आन्तरिक संघर्ष (Conflict) होता है। इसकी कई श्रेणियां हैं—उत्तेजना, निराशा, अन्य मनस्कता, शून्य मनस्कता। ये सब पागलपन की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। रोगी स्वयं वासना की उत्तेजना का प्रतिरोध करने में, तर्क वितर्क, नीति विवेक का विचार कर स्वयं अपने आप मन को अव्यवस्थित कर देते हैं।

एक प्रकार से पागलपन वासना का संघर्ष ही कहना चाहिए। शरीर वासना का पिंड है। अनेक प्रकार की वासनाएँ अवस्थानुसार समयानुकूल पात्र और साधन मिलने पर फौरन् उत्तेजित हो जाती हैं और फूट पड़ने के लिए भागना चाहती हैं। वासना की तीव्र उत्तेजना से मन की व्यवस्था बदल जाती है और स्थिर अवस्था में जैसे विचार थे अब भिन्न हो जाते हैं और न्याय तथा तर्क युक्त न रह कर मन अपने वासना के अनुकूल झुक जाता है। स्थिर अवस्था में मन के भाव निष्पक्ष थे परन्तु वासना की गति होने पर विचारों में वासना के प्रति पक्षपात होने लगता है। अन्य विषयों पर विचार अथवा कार्य करते हुए भी मनुष्य की भावना आकर उसी पर केन्द्रित हो जाती है। वह समझता है कि ऐसा ही ठीक है। पक्षपात भी वासना का ही एक अंग है। वासना के विरुद्ध मन में कोई विचार नहीं आता। वासना के आवरण में अनेक धोके लगते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक भाषा में, वासना के आवरण में अपने आपको धोका देना है। यह धोका दो प्रकार से होता है—धारणा तथा तर्क से। मनुष्य अपने आप कितना भी तर्क करे, वह वासना के आवरण में ही रहता है। वस्तुतः वासना की उत्तेजना तर्क वितर्क और सिद्धान्तों की आड़ लेकर उसे प्रकट न होने देने तथा अपनी वासना तथा आदर्श चरित्र में परस्पर संघर्ष के कारण ही मन अव्यवस्थित होकर पागलपन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ अपने विचित्र लक्षणों सहित प्रकट होती हैं।

भिन्न भिन्न प्रकार का पागलपन एक प्रकार का आवेश होता है। मन अपने स्वस्थ स्थिर अवस्था से भटक कर अस्थिर होकर आवेश में आ जाता है। उदासीनता अथवा अन्य मनस्कता भी पागलपन के आवेश हैं। पागल व्यक्ति अपने अनुकूल आवेश में ही लहराया करते हैं। वासना की उत्तेजना अथवा किसी भाव या अनुभव के भाव या आघात से उसके मन को उन्माद सा हो जाता है और वह जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखते हुए व्यवहार करता है।

प्रकृति के विरुद्ध आदर्श, सिद्धान्त, भय, लज्जा, संकोच, उच्छृंखलता, उद्दंडता आदि से उत्पन्न आवेश, वासना, आचरण पागलपन के लक्षण हैं। जबरदस्ती रोका हुआ पानी का बहाव जब बाँध तोड़ कर अनियंत्रित रूप से वह निकलता है, तब बड़े बड़े उपद्रव करता है। उसी प्रकार अस्वाभाविक रूप से रोकी हुई वासनाएँ निरंकुश होकर मनुष्य को पागल बना देती हैं। आत्म संघर्ष और दमन द्वारा वासनाओं की निवृत्ति का प्रयत्न अप्राकृतिक है। शरीर के रहते शरीर की प्रवृत्ति और तन्निहित वासना नहीं छूट सकती। निरोध से सुख-बुद्धि नहीं मिटती, चाह बनी रहती है और अवसर पाकर अनियंत्रित विकृत मार्ग से फूट कर पागलपन उत्पन्न करती है।

पागलपन से मुक्ति के उपाय—

यदि मनुष्य स्थिर चित्त से अपनी प्रवृत्ति के

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

अनुकूल आचरण करता रहे, तो विरोधी भाव न उत्पन्न हों। विरोधी भाव न उत्पन्न होने से, उसमें आत्म-संघर्ष और वासना-दमन आदि प्रयत्न न होंगे, और इनसे भ्रम या पागलपन, व्यथा या अन्य दुःखद आवेश न होंगे।

प्रकृति विरुद्ध जाने से अनेक प्रकार के विलक्षण अनुभव उत्पन्न होते हैं। अतः ऐसे पागलपन से बचने के लिए मनुष्य को अपनी प्रकृति में, अपने आप में, स्थिर होना चाहिए अन्यथा सारा संसार पागल है। स्थिर चित्त वाले का आचरण कैसा होता है और होना चाहिए—यह जानने के लिए आदर्शवादी, त्यागी, वैरागी, साधु, नेता, या एकान्तवासी योगी बनने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण जी तक ने मनुष्य को अपनी प्रकृति और स्थिर मार्ग से च्युत होकर एकांगी जीवन धारण करने का उपदेश नहीं दिया। उन्होंने बताया कि मन को अपने आप में स्थिर रख कर अन्य कुछ भी विचार न करो। इन्द्रियां तो अपना कार्य करने के लिए हैं। ऐसा जो व्यवहार करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है। समत्व योगी इन्द्रिय संयम के लिए हठ नहीं करता। इन्द्रियां और उनके विषय आत्मा की अपनी प्रकृति हैं। अतः आत्म संघर्ष और दमन द्वारा वासनाओं की निवृत्ति का प्रयत्न अप्राकृतिक है। जो आदर्श की आड़ लेकर ऐसी अप्राकृतिक तपस्या करते हैं, वह उनका पाखंड और दम्भ है क्यों कि इस प्रकार के निरोध से सुख की तृष्णा नहीं मिलती, चाह बनी रहती है और अवसर पाकर फूट निकलती है। अतः इन्द्रिय निग्रह के लिए न तो कष्ट करना चाहिए न संयम के मद में प्रकृति के विरुद्ध हो जाना चाहिए। प्रकृति के विरुद्ध आचरण नैतिक तथा शारीरिक दृष्टि—दोनों से ही बुरा है।

अनेक मार्गी धाराओं के कारण उत्पन्न हुई मानसिक अवस्था के लिए जप करने का साधन विशेष लाभदायक है। किसी भी इष्ट मंत्र का जप करने से मन में स्थिरता तथा विचारों में एकाग्रता आती है। जप का साधन बिल्कुल मानसिक है। नेत्र मूंद कर जप करना चाहिए जिससे आंखें और मस्तिष्क शान्त रहते हैं और मन अन्तर्मुखी होता है। जप की अधिक संख्या अल्पकाल में पूर्ण कर लेने की जल्दबाजी अनुचित है। अतः कई बार थोड़े थोड़े समय लगा कर थोड़ा जप करें और संख्या पर ध्यान न दें। इस प्रकार सामयिक अल्प अभ्यास से स्थिरता प्राप्त होते ही एकाग्रता का मार्ग खुल जायगा।

मानसिक नपुंसकता और—बांझपन।

अन्य प्राणियों की भांति मनुष्य को अपनी काम वासना की पूर्ति का समुचित अवसर समाज में उपलब्ध नहीं होता। इस अतृप्ति के फल स्वरूप, मुख्यतः देर से विवाह करने पर या आजन्म ब्रह्मचारी रहने से पुरुषों में मानसिक नपुंसकता एवं स्त्रियों में मानसिक बांझपन की उत्पत्ति होती है। एक आयु ऐसी आती है, जिस पर विवाह होकर वासना की भूख शान्त होना इस हाड़ मांस के प्राणी के लिए अनिवार्य और प्राकृतिक है। प्रकृति इस इच्छा की तृप्ति चाहती है तथा विभिन्न रूपों में प्रेम की भूख मिटाने का उपक्रम करती है।

मानसिक नपुंसकता के कारण पुरुष वीतराग हो जाता है साधारण मनोरंजन में भी भाग नहीं लेता स्त्रियों को घृणा तथा अनादर की दृष्टि से निरखता है, उनके सम्पर्क में नहीं आना चाहता, कभी कभी उनसे लड़ता झगड़ता गुस्सा होता है। प्रायः सन्तान निरोध के प्रयोग करने वाले व्यक्ति भी इस रोग के शिकार बन कर अतृप्त रहा करते हैं। उनका वासनामय जगत् अत्यन्त अशान्त

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

रहता है। स्त्रियां सन्यासिनी सी, दुःखी असंतुष्ट एवं अतृप्त बनी रहती हैं। अपने पति के चरित्र पर सन्देह करने वाली स्त्री ईर्षा से ऐसी जलती है कि हिस्टीरिया की शिकार बन जाती है। ऐसे रोगी प्रायः बात बात पर शक करते हैं। पुरुष अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह कर पागल से बन जाते हैं। रति के बिना. अर्थात् वासना की पूर्ति के अभाव में प्रीति भी भयानक मानसिक रोग का कारण बनती है।

वासना को रोकिये मत, उसे निकलने बहने का प्राकृतिक मार्ग दीजिए। समाज की रीति नीति मर्य्यादा को दृष्टि में रख कर वासना की पूर्ति करना अनेक मानसिक रोगों से बचना है। पति पत्नि को एक दूसरे के चरित्र पर भूल कर भी सन्देह न करना चाहिए। अधिक दिन तक अविवाहित रहना, सन्तान निग्रह के उपायों की शरण लेना साधुत्व का स्वांग करना, आदर्श (Ideal) की दुनियां में रँगे रहना, ब्रह्मचर्य व्रत का नाटक करना मानसिक विकारों को न्योता देना है। प्रेम की पूर्ति, दाम्पत्य प्रेम के तीनों अङ्गों (रति या वासना मय प्रेम, प्रीति (निस्वार्थ प्रेम के प्रसार) में होना चाहिए। प्रेम की प्रत्येक अवस्था क्रमशः एक दूसरे के पश्चात् प्राकृतिक रूप से पार किया जाना मनोविज्ञान को दृष्टि से अनिवार्य है। काम वासना की पूर्ति होना चाहिए। जब आप उस वासना का शोध कर प्रेम की अन्तिम अवस्था में पहुँच जायँगे, तभी आत्मा का समुचित प्रसार हो सकेगा। दाम्पत्य प्रेम का प्रसार प्राकृतिक है। विषय भोग का सहवास आत्म प्रसार की प्रथम अवस्था है। इस स्टेज को पार करने के पश्चात ही मानसिक शक्ति का विकास हो सकता है। रति, प्रीति और प्रेम प्रसार का चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार है। अतएव, अपने प्रेम मय जीवन में बड़े सावधान रहें।

मनोभावों को कुचलिये नहीं। दलित मनोभाव सदैव प्रकाशन में लगे रहेंगे। प्रतिक्रिया स्वरूप या तो आप विक्षिप्त हो जायँगे अथवा किसी अन्य मानसिक व्याधि के पंजे में पड़ेंगे। कभी कभी स्त्रियां कामवासना के दमन के कारण विक्षिप्त बन जाती हैं। ऐसी अवस्था में रेचन विधि का प्रयोग कीजिए।

रेचन विधि क्या है ?

रेचन विधि छुपी हुई काम वासना का चेतन के समक्ष लाने की मनोवैज्ञानिक विधि है। जब चेतना के सन्मुख कोई गुप्त वृत्ति, दलित मनोभाव, वासना इत्यादि लाया जाता है तो वह इच्छाशक्ति के अधिकार में आ जाता है और फिर व्यक्त मन (Conscious mind) के द्वारा निराकरण किया जा सकता है। दलित मनोभाव का चेतना के समक्ष प्रकाशन होने से विक्षिप्तता दूर हो जाती है। मानसिक जगत किसी भी भावना को क़ैद में नहीं रखना चाहता। वह तो पूर्ण मुक्ति. तादात्म्य, समस्वरता (Harmony) चाहता है। अतएव, स्थायी लाभ के लिए हमें चाहिए कि उस दलित मनोभाव से मित्रता करें और अपना कठोर दृष्टिकोण बदल दें उससे समन्वय कर लें। जब तक प्रत्येक कुचली हुई वासना चेतन और अचेतन मन से सामंजस्य स्थापित नहीं कर लेती, सम्पूर्ण रेचन नहीं हो सकता न मानसिक व्यथा का अन्त ही हो सकता है। हेडफील्ड साहब के अनुसार किसी वासना के दमन का ज्ञान कर लेना, उसे ठीक तरह समझ लेना भी मनोवैज्ञानिक प्रकाशन है। इससे भी सामंजस्य स्थापित हो सकता है।

सात्विक सहायताएँ।

१०) श्री० बी० एम० शारदा शोलापुर।
५) श्री० इन्द्रमल हुपेचन्द बगड़।
२) श्री० ठाकुर प्रसादसिंह नौनन्दा बाजार।
१) श्री० मुरलीधर जी सैदपुर।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

धर्म कार्यों में अशुद्ध घृत न बरता जाय।

(श्री० अनिप्रास दास पोद्दार, कलकत्ता)

बनास्पति घी मनुष्य जाति के स्वास्थ्य को नष्ट करने वाला एक मन्द विष है। इसके प्रचलन से गौ वध को प्रोत्साहन मिलता है जिससे भारत का गौ धन दिन दिन कम होता जा रहा है। कल्याण के 'गो अंक' में इस तथ्य पर सुविस्तृत प्रकाश डाला गया है।

डाक्टर एम० एन० गोडबोले M. A. B. Sc., P. H. D. (Berlin) गौ अंक में लिखते हैं कि 'बनास्पति घी में निकिल धातु डालते हैं, जिसके परमाणु उसमें रहते हैं, जो स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाते हैं। ऐसे ही तेजाब इसमें दिये जाते हैं जो स्वास्थ्य पर बुरा असर करते हैं। जिस गैस द्वारा यह जमाया जाता है उसकी गरमी ४०-४६ डिग्री ग्रेड होती है। लेकिन मानव शरीर में ३७ डिग्री ग्रेड तापमान ही होता है। अतः मानव शरीर से या तो वह अनपचा ही निकल जाता है या यकृत और प्लीहा की नसों में जमता है और कब्ज तथा अन्य उदर रोगों का सृजन जाता है। एवं धीरे धीरे मनुष्य के प्राणों का ग्राहक बन जाता है। आगे वे लिखते हैं कि इसमें घी की सुगंध और विटामिन के लिए एक प्रकार का मछली का तेल मिलाया जाता है।

डेयरी एक्सपर्ट सर दातारसिंह ने हाल ही में भिवानी गो कान्फ्रेन्स के पद से भाषण देते हुए वेजीटेबिल घी को गौ रक्षा में बाधा पहुंचाने वाला बताया है। यह राष्ट्राय धन और स्वास्थ्य का नाशक है। ऐसे अशुद्ध अपवित्र और हानिकर पदार्थ को व्यवहार में लाने से जितना बचा जाय उतना ही अच्छा है। निकट भविष्य में २०-३० कारखाने इसके और भी खुलने वाले हैं, यदि जनता ने इसकी हानियों की ओर ध्यान न दिया तो इसका प्रचार और भी तीव्र गति से बढ़ेगा और राष्ट्रीय स्वास्थ्य तथा धन की भारी क्षति होगी।

ऐसे हानिकारक और अपवित्र पदार्थ को धार्मिक कृत्यों में तो स्थान दिया ही नहीं जाना चाहिए। मन्दिरों में भगवान के भोज्य पदार्थों में, यज्ञों की आहुतियों तथा पित्रेश्वरों के श्राद्धों में और अन्य प्रकार के ब्रह्मभोज, और धर्म यज्ञादि कार्यों मे इसका प्रयोग करने से धर्म लाभ के स्थान पर धर्म हानि होती है। धार्मिक व्यक्तियों को इस दिशा में पूरी पूरी सावधानी बरतानी चाहिए। देव और पित्रों को अशुद्ध एवं हानिकारक पदार्थ देने से उनका बरदान नहीं अभिशाप ही प्राप्त होता है।

देव पूजा और धार्मिक कर्मकाण्ड करने कराने वाले धर्म प्रिय व्यक्तियों से मेरा विशेष रूप से अनुरोध है कि वे धर्मकार्यों में इसका पूर्ण तया निशेध करें। मन्दिरों में इस घृत के दीपक न जलाये जांय। जो लोग देव पूजन का सामान बेचते हैं उन पर कड़ी दृष्टि रखी जाय केवल उन्हीं के यहां से सामिग्री मँगाई जाय जो शुद्ध घृत बेचने का विश्वास दिलावें। इस दिशा में देश व्यापी आन्दोलन होने की आवश्यकता है। प्रमुख तीर्थों के विद्वान पंडित, महंत, साधु, सन्यासी इस आन्दोलन का नेतृत्व करें और स्थान स्थान पर ऐसे निश्चय करावें कि देव मन्दिरों एवं धर्म कार्यों में केवल शुद्ध एवं विश्वस्त घृत का ही प्रयोग हो। अशुद्ध वेजीटेबल का उपयोग निषिद्ध हो। आशा है कि विज्ञजन धार्मिक क्षेत्रों से इसका निशेध आरम्भ करके इस आन्दोलन को आगे बढ़ावेंगे और गौ रक्षा तथा देश के धन,धर्म तथा स्वास्थ्य की रक्षा करके पुण्य के भागी बनेंगे।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.

बसंत

(लेखक—श्री० आरसीप्रसाद सिंहजी)

मैंने बसन्त के पुष्पों से पूछा—"तुम कितने हो सुंदर ?"
वे बोले—"हां, तुमने पाया है विधि से सुन्दरता का वर !
हम उपवन में खिलते प्रतिदिन, प्रतिक्षण हँसते ही रहते हैं ;
हम झड़ जाते, मुरझा जाते; पर, यह न किसी से कहते हैं !"

मैंने बसन्त के तरुओं से पूछा—तुम कितने हो शीतल ?'
वे बोले—'हां, हममें आये हैं नूतन वे पल्लव कोमल !
रस मिट्टी का लेकर, देते हम फूल और फल मधुर पके ;
यह सघन हमारी छाया है, रुक जाते राही जहां थके !'

मैंने बसन्त की लतिका से पूछा—'तुम कितनी हो कोमल ?'
वह बोली—'हां, बढ़ती जाती मैं अपने पथ पर हूं प्रतिपल !
संबल का ज्ञान नहीं मुझको; निज दुर्बलता का ध्यान नहीं !
मैंने सीखा है झुकना बस; मुझमें छवि का अभिमान नहीं !'

मैंने बसन्त मलयानिल से पूछा—'तुम कितने हो निर्मल ?'
वह बोला—'मैं वितरण करता अग-जग में कुसुमों का परिमल !
मैं कुञ्ज-कुञ्ज का सौरभ ले, घर-घर में सबको दे आता ;
सुख-सुषमा-शीतलता देकर, जग की दुख-ज्वाला ले आता !'

मैंने बसन्त के विहँगों से पूछा—'तुम कितने हो चंचल ?'
वे बोले—'हम गाते रहते आनन्द-गीत प्रतिक्षण प्रतिपल !
बन-उपवन में भरते रहते अपना कल-गान, विकल कूजन;
हममें नवजीवन का स्वर है; हममें है भरा नवल यौवन !

जिनमें जीवन है, यौवन है ; वे मस्ती से इठलाते ही !
चांदनी उतरती भूतल पर मधुकर-गण बन में गाते ही !
कह लेते ही मन की बातें, अपना संसार बसाते ही ;
बल्लरियां चढ़ जातीं ऊपर, तरु का अवलंबन पाते ही !

फूलों की दुनिया भी पल-भर ; मधु ऋतु का वैभव भी नश्वर !
फिर भी न जगत में जीवन का मधु का प्रवाह रुकता क्षण-भर !
मैंने उस दुनिया को देखा; बन-बन में छाया था बसन्त ;
फिर, एक बार, भू को देखा, 'हा-हा'-रव मुखरित था दिगंत।

—किशोर ।

Disclaimer / Warning: All literary and artistic material on this website is copyright protected and constitutes an exclusive intellectual property of the owner of the website. Any attempt to infringe upon the owners copyrights or any other form of intellectual property rights over the work would be legally dealt with. Though any of the information (text, image, animation, audio and video) present on the website can be used for propagation with prior written consent.